आज़ादी का अमृत महोत्सव

फरवरी, 2022
I.S.S.N. : 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री अविनाश शुक्ला
श्री असलम खान

सहायक संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह
श्री जसवन्त सिंह

ISSN-2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 195/-

वार्षिक : ₹ 2,100/-

© 2022 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

फरवरी, 2022 अंक - 2

प्रधान संपादक
कमला कान्त

संपादक
अविनाश शुक्ला

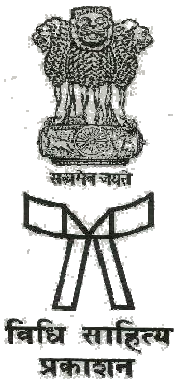

[2022] 1 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से हमने आपके अवलोकनार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **ऋषिपाल सिंह सोलंकी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** [2022] 1 उम. नि. प. 159 वाले मामले में तारीख 18 नवंबर, 2021 को पारित निर्णय प्रस्तुत किया है । इस मामले में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94 सपठित किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2007 के नियम 12 से संबंधित किशोर अभियुक्त की आयु के विषय से संबंधित विवाद्यक अंतर्वलित था । इस मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने किशोर अभियुक्त द्वारा किशोरावस्था के दावे के संबंध में निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि किशोर अभियुक्त की किशोरावस्था का अभिनिर्धारण का कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किया जा सकता है और जहां तक कि मामले के अंतिम निपटारे के पश्चात् भी किया जा सकता है और उच्चतम न्यायालय के समक्ष भी किया जा सकता है क्योंकि किशोरावस्था का विवाद्यक 2015 के अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2) और उपधारा (3) के अध्यधीन होगा । किंतु जब किसी व्यक्ति को किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाया जाता है तब धारा 94 लागू होगी । धारा 94 के अधीन किशोर की आयु के विषय में उपधारणा और अवधारण किया जाएगा । उपरोक्त मामले में किशोर अभियुक्त ने किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष घटना की तारीख पर किशोर होने का दावा किया था और साक्ष्य में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र

प्रस्तुत किया । किशोर न्याय बोर्ड ने मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र के आधार पर अभियुक्त को किशोर माना । विपक्षी ने अपील में किशोर अभियुक्त की चिकित्सीय जांच कराकर आयु का अवधारण कराए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया । किशोर न्याय बोर्ड द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया । इस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई अपील और पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज कर दिए गए । अपील में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि अभियुक्त द्वारा घटना के समय किशोरावस्था के समर्थन में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया और शिक्षा बोर्ड द्वारा उसकी प्रमाणिकता का सत्यापन किया गया तथा विपक्षी को उसके मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र का खंडन करने का अवसर प्रदान किया गया, किंतु विपक्षी ने खंडन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया । ऐसी स्थिति में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उपदर्शित आयु के आधार पर किशोरावस्था की उपधारणा की जाएगी और चिकित्सीय जांच के आधार पर आयु का अवधारण करने वाले आदेश में हस्तक्षेप उचित नहीं होगा ।

इस अंक में विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

फरवरी, 2022

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** जय दत्त और एक अन्य	209
उत्तराखंड राज्य **बनाम** सचेन्दर सिंह रावत	291
एन. राजेन्द्रन **बनाम** एस. वल्ली	252
ऋषिपाल सिंह सोलंकी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	159
सुनील कुमार **बनाम** बिहार राज्य और एक अन्य	222
सुभाष **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	238

संसद् के अधिनियम

विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 - 53

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (2016 का 2)

– धारा 94 – आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण – अभियुक्त-प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष घटना की तारीख को किशोर होने का दावा किया जाना – साक्ष्य में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाना – किशोर न्याय बोर्ड द्वारा अभियुक्त को किशोर अपचारी घोषित किया जाना – अपीलार्थी-विरोधी पक्षकार द्वारा चिकित्सीय जांच के आधार पर अभियुक्त की आयु का अवधारण किए जाने के लिए आवेदन किया जाना – बोर्ड द्वारा आवेदन खारिज किया जाना – अपील और पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज हो जाना – अपील – जहां अभियुक्त द्वारा घटना के समय पर अपनी किशोरावस्था के दावे के समर्थन में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया और शिक्षा बोर्ड द्वारा उसकी प्रामाणिकता का सत्यापन किया गया तथा विरोधी पक्षकार द्वारा उसका खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया, वहां मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उपदर्शित आयु से उसकी किशोरावस्था की उपधारणा उद्भूत होने के कारण बोर्ड तथा निचले न्यायालयों द्वारा चिकित्सीय जांच के आधार पर आयु का अवधारण करने के आवेदन को खारिज करने वाले आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 159

– धारा 94 और 9 [सपठित किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2007 का नियम 12]

पृष्ठ संख्या

– आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण तथा प्रक्रिया – अभियुक्त द्वारा किशोरावस्था का दावा – प्रक्रम – अभियुक्त द्वारा किशोरावस्था का दावा दांडिक कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किया जा सकता है और यहां तक कि मामले का अंतिम रूप से निपटारा होने के पश्चात् भी किया जा सकता है तथा ऐसा दावा पहली बार उच्चतम न्यायालय के समक्ष भी किया जा सकता है और जब किशोरावस्था का विवाद्यक किसी न्यायालय के समक्ष उद्भूत होता है, तो यह धारा 9 की उपधारा (2) और (3) के अधीन होगा किंतु जब किसी व्यक्ति को किसी समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाया जाता है, तब धारा 94 लागू होगी ।

ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 159

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 7, 19 और 20 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 12, 29(2) और 29(3) तथा हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 15] – कुटुंब न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील – परिसीमा अवधि – परिसीमा अधिनियम के उपबंधों का लागू होना – चूंकि कुटुंब न्यायालय अधिनियम एक अकेला अधिनियम नहीं है और यह हिंदू विवाह अधिनियम जैसे अधिनियम से पोषित होने के कारण धारा 20 का उपबंध परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के उपबंध को अध्यारोही नहीं करेगा और विवाह के विघटन की डिक्री से व्यथित पक्षकार द्वारा अपील के साथ संलग्न करने के लिए निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति अभिप्राप्त

करने में व्यतीत हुए समय को अपील करने के लिए नियत अवधि से अपवर्जित किया जा सकेगा तथा परिसीमा अधिनियम की धारा 29(3) में "कार्यवाही" शब्द के अर्थांतर्गत केवल मूल कार्यवाहियां आने के कारण यह धारा अपीली कार्यवाहियों पर लागू नहीं होगी ।

एन. राजेन्द्रन बनाम **एस. वल्ली** 252

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 439 – जमानत पर छोड़ा जाना – अभियुक्त और सह-अभियुक्तों द्वारा गोली मारकर मृतक की हत्या किया जाना और इत्तिलाकर्ता को भी क्षतिग्रस्त किया जाना – सेशन न्यायालय द्वारा अपराध की गंभीरता को देखते हुए अभियुक्त-प्रत्यर्थी (सं. 2) के जमानत के लिए आवेदन को खारिज किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना और जमानत प्रदान करते हुए कोई कारण अभिलिखित न किया जाना – संधार्यता – जहां अभियुक्त की आपराधिक पृष्ठभूमि रही हो और वह मृतक और क्षतिग्रस्त इत्तिलाकर्ता के पिता और भाई की पूर्व में की गई हत्या के दोहरे मामले में अंतर्ग्रस्त रहा हो और जिसका अभी विचारण होना है तथा उसके विरुद्ध इत्तिलाकर्ता और साक्षियों पर दबाव डालने के अभिकथन किए गए हों, वहां उच्च न्यायालय द्वारा अपराध की घोरता, प्रकृति और गंभीरता पर विचार न करते हुए कोई कारण अभिलिखित किए बिना अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है और ऐसे आदेश को रद्द करना उचित होगा ।

सुनील कुमार बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य** 222

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 148 और 149/302 – अपीलार्थियों सहित कई अभियुक्तों द्वारा मृतक पर हमला करके उसकी हत्या किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मृतक के भाई और एक अन्य साक्षी के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – अपील न्यायालय द्वारा अभियुक्तों की अपील को खारिज किया जाना – अभियुक्तों में से दो अभियुक्तों (अपीलार्थियों) द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील – जहां साक्षियों के साक्ष्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो रहा हो कि इत्तिलाकर्ता-साक्षी द्वारा प्रतिपरीक्षा के दौरान उसके द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्त-अपीलार्थियों के संबंध में उपवर्णित वृत्तांत और अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान दिए गए अभिसाक्ष्य में तात्विक सुधार करने का प्रयत्न किया गया हो और साक्षियों के साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास हो तथा मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में उपदर्शित क्षतियां अभियोजन के पक्षकथन के अनुरूप न हों, वहां अभियुक्त संदेह के फायदे के हकदार हैं और उन्हें दोषमुक्त करना न्यायोचित होगा ।

सुभाष बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 238

– धारा 300, अपवाद-4 और धारा 302 – हत्या – अभियुक्त और मृतक के बीच एक समारोह में कहा-सुनी होना – समारोह में सम्मिलित अन्य व्यक्तियों के बीच-बचाव के कारण मामला समाप्त हो जाना – अभियुक्त द्वारा बाद में लकड़ी का एक मोटा खुरदरा टुकड़ा लेकरमृतक का पीछा किया जाना और मृतक के मकान के

पृष्ठ संख्या

सामने उस पर कई सारे जोरदार प्रहार किया जाना – मृतक को सिर पर पहुंचीं गंभीर क्षतियों के कारण बाद में उसकी मृत्यु हो जाना – घटना को मृतक की पत्नी, मां और अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा देखा जाना – अभियुक्त को दोषसिद्ध और आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मामला धारा 300 के अपवाद-4 के अंतर्गत आने के आधार पर आजीवन कारावास को दस वर्ष के कठोर कारावास में संपरिवर्तित किया जाना – संधार्यता – जहां अभियुक्त और मृतक के बीच हुई कहा-सुनी की घटना समाप्त हो जाने के पश्चात् अभियुक्त बाद में लकड़ी का एक खुरदरा टुकड़ा लेकर मृतक के पीछे भागा और उसे गंभीर क्षतियां कारित कीं और परिणामस्वरूप बाद में उसकी मृत्यु हो गई, वहां यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतक की मृत्यु अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुई लड़ाई में कारित की गई थी, चूंकि अभियुक्त ने पहली घटना समाप्त हो जाने के पश्चात् दूसरी घटना में मृतक को क्षतियां कारित की थीं, इसलिए धारा 300 का अपवाद-4 लागू नहीं होने के कारण अभियुक्त को आजीवन कारावास का दंडादेश देते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित करना उचित होगा ।

उत्तराखंड राज्य बनाम **सचेन्दर सिंह रावत** 291

– धारा 302/34 और धारा 326 – हत्या या खतरनाक आयुधों द्वारा घोर उपहति कारित करना – अभियुक्तों द्वारा विभिन्न आयुधों से मृतक के सिर सहित शरीर के अन्य भागों पर गंभीर क्षतियां कारित किया जाना – घटना के छह दिन पश्चात् क्षतियों के कारण

पृष्ठ संख्या

मृतक की मृत्यु हो जाना – अभियुक्तों को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मृतक की मृत्यु घटना के छह दिन पश्चात् होने के आधार पर धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को धारा 326 में संपरिवर्तित किया जाना – संधार्यता – जहां डाक्टर द्वारा मृतक की मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में अन्य क्षतियों के साथ-साथ मृतक के मार्मिक अंग सिर पर गंभीर क्षति पाए जाने और उसके कारण मृतक की मृत्यु होने का उल्लेख किया गया हो, वहां केवल इस कारण कि मृतक की मृत्यु घटना के छह दिन पश्चात् हुई थी, अभियुक्तों की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को धारा 326 के अधीन दोषसिद्धि में संपरिवर्तित करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **जय दत्त और एक अन्य** 209

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 142 – उच्चतम न्यायालय की उसके समक्ष लंबित मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए डिक्री या आदेश पारित करने की अधिकारिता – पक्षकारों के बीच विवाह का असुधार्य रूप से टूट जाना – विवाह का विघटन करने के लिए पक्षकारों की सहमति – जहां मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट होता हो कि विवाह के पक्षकारों के बीच सुलह की कोई संभावना नहीं है और उनका पुनर्मिलन होना असंभव है तथा विवाह असुधार्य रूप से टूट गया है, वहां उच्चतम न्यायालय संविधान के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए ऐसे विवाह के

पृष्ठ संख्या

विघटन की घोषणा करते हुए विवाह के विघटन की डिक्री पारित कर सकता है और इसके लिए पक्षकारों की सहमति आवश्यक नहीं है ।

एन. राजेन्द्रन बनाम **एस. वल्ली** 252

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(ik) – क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद – प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा गर्भाधारण के पश्चात् अपने पैतृक गृह चले जाना – लंबे समय तक ससुराल वापस न आना – अपीलार्थी-पति द्वारा क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल किया जाना – कुटुंब न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना – प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा की गई अपील में उच्च न्यायालय द्वारा डिक्री को उलट दिया जाना – संधार्यता – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर क्रूरता का कोई मामला सिद्ध न होता हो और केवल आपसी नोंक-झोंक का मामला हो, वहां क्रूरता के आधार पर प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को कायम नहीं रखा जा सकता है ।

एन. राजेन्द्रन बनाम **एस. वल्ली** 252

[2022] 1 उम. नि. प. 159

ऋषिपाल सिंह सोलंकी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

[2021 की दांडिक अपील सं. 1240]

18 नवंबर, 2021

न्यायमूर्ति (डा.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (2016 का 2) – धारा 94 – आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण – अभियुक्त-प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष घटना की तारीख को किशोर होने का दावा किया जाना – साक्ष्य में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाना – किशोर न्याय बोर्ड द्वारा अभियुक्त को किशोर अपचारी घोषित किया जाना – अपीलार्थी-विरोधी पक्षकार द्वारा चिकित्सीय जांच के आधार पर अभियुक्त की आयु का अवधारण किए जाने के लिए आवेदन किया जाना – बोर्ड द्वारा आवेदन खारिज किया जाना – अपील और पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज हो जाना – अपील – जहां अभियुक्त द्वारा घटना के समय पर अपनी किशोरावस्था के दावे के समर्थन में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया और शिक्षा बोर्ड द्वारा उसकी प्रामाणिकता का सत्यापन किया गया तथा विरोधी पक्षकार द्वारा उसका खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया, वहां मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उपदर्शित आयु से उसकी किशोरावस्था की उपधारणा उद्भूत होने के कारण बोर्ड तथा निचले न्यायालयों द्वारा चिकित्सीय जांच के आधार पर आयु का अवधारण करने के आवेदन को खारिज करने वाले आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 – धारा 94 और 9 [सपठित किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2007 का नियम 12] – आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण तथा प्रक्रिया – अभियुक्त द्वारा किशोरावस्था का दावा – प्रक्रम – अभियुक्त द्वारा किशोरावस्था का दावा दांडिक कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किया जा सकता है और यहां तक कि मामले का अंतिम रूप से निपटारा होने के पश्चात् भी किया जा सकता है तथा ऐसा दावा पहली बार उच्चतम न्यायालय के समक्ष भी किया जा सकता है और जब किशोरावस्था का विवाद्यक किसी न्यायालय के समक्ष उद्भूत होता है, तो यह धारा 9 की उपधारा (2) और (3) के अधीन होगा किंतु जब किसी व्यक्ति को किसी समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाया जाता है, तब धारा 94 लागू होगी ।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि एक दुर्घटना में, जो तारीख 5 अप्रैल, 2020 को घटी थी, अन्य के साथ-साथ, प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत सोलंकी **उर्फ** निशु के साथ-साथ अन्य अभियुक्तों ने अभिकथित रूप से अपीलार्थी और उसके परिवार पर आक्रमण किया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें गंभीर क्षतियां पहुंचीं तथा अपीलार्थी के पिता भोपाल सिंह की मृत्यु हो गई और उसके चाचा कालूराम की पूर्वोक्त घटना में उसे पहुंची गंभीर क्षतियों के कारण तारीख 9 मई, 2020 को मृत्यु हो गई थी । पुलिस ने तारीख 22 जुलाई, 2020 को प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत सहित सभी अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 323, 307, 302 और 34 के अधीन एक आरोप पत्र फाइल किया । निशांत ने अपनी माता/नैसर्गिक संरक्षक-प्रत्यर्थी सं. 3 के माध्यम से किशोर न्याय बोर्ड, बागपत के समक्ष एक आवेदन फाइल किया जिसमें यह अनुरोध किया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2/अभियुक्त अर्थात् निशांत को एक किशोर अपचारी के रूप में घोषित किया जाए क्योंकि अभिकथित अपराधों के घटित होने की तारीख को उसकी आयु लगभग 15 वर्ष 8 माह थी । उक्त आवेदन पर प्रत्यर्थी सं. 3, जो निशांत की माता और नैसर्गिक संरक्षक है, के माध्यम से उसकी आयु के संबंध में साक्ष्य के रूप में मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया । इस बारे में पता

चलने पर इस अपील में अपीलार्थी अपने काउंसेल के माध्यम से उक्त कार्यवाही में उपसंजात हुआ और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन एक आवेदन फाइल करके प्रत्यर्थी सं. 3 की प्रतिपरीक्षा करने के लिए किशोर न्याय बोर्ड की अनुज्ञा की ईप्सा की । अपीलार्थी को ऐसा करने के लिए अनुज्ञात किया गया । एक अन्य साक्षी मनोज कुमार, प्रधानाध्यापक, सरदार वल्लभभाई पटेल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, शाजरपुर, कैडना, जिला बागपत की भी प्रति. सा. 2 के रूप में परीक्षा की गई और तत्पश्चात् सुरेन्द्र कुमार सैनी, प्रधानाध्यापक, सर्वोदय पब्लिक स्कूल, खिंडोरा, जिला बागपत की प्रति. सा. 3 के रूप में परीक्षा की गई । उक्त कार्यवाहियों में अपीलार्थी द्वारा किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत की वास्तविक और सही आयु अभिनिश्चित करने के लिए उसकी चिकित्सीय जांच करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया । किशोर न्याय बोर्ड द्वारा उक्त आवेदन को खारिज कर दिया गया । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने जिला और सेशन न्यायाधीश, बागपत के समक्ष एक दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया और उच्च न्यायालय के समक्ष भी एक आवेदन फाइल किया जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, किशोर न्याय बोर्ड, बागपत के समक्ष लंबित मामले में की गई कार्यवाहियों को राज्य के किसी अन्य किशोर न्याय बोर्ड को अंतरित करने का अनुरोध किया गया । उच्च न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान, किशोर न्याय बोर्ड, बागपत ने निशांत की माता प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा फाइल किए गए आवेदन को मंजूर किया और निशांत को एक किशोर अपचारी के रूप में घोषित किया । अपीलार्थी ने उक्त आदेश को चुनौती देते हुए किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 101 के अधीन जिला और सेशन न्यायाधीश, बागपत के समक्ष एक अपील फाइल की । उक्त न्यायालय द्वारा इस अपील को खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष एक दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया । उक्त दांडिक पुनरीक्षण आवेदन को भी उच्च न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिया गया । इससे व्यथित होकर, अपीलार्थी द्वारा विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय

के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 में किशोर न्याय बोर्ड या समिति के समक्ष लाए गए बालक की आयु की किशोरावस्था के संबंध में उपधारणा करना उपबंधित है । किंतु यदि बोर्ड या समिति के पास उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति के बारे में यह संदेह करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि वह बालक है या नहीं, तो वह साक्ष्य की ईप्सा करके आयु का अवधारण करने की प्रक्रिया कर सकता है । अत: आरंभिक प्रक्रम पर उक्त प्राधिकारियों द्वारा यह उपधारणा की जानी चाहिए कि समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाया गया बालक किशोर है । उक्त उपधारणा बालक का अवलोकन करके की जानी चाहिए । तथापि, उक्त उपधारणा तब नहीं की जा सकती है जब समिति या बोर्ड के पास उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति के संबंध में यह संदेह करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि वह बालक है या नहीं । ऐसी स्थिति में, वह साक्ष्य द्वारा आयु अवधारण की प्रक्रिया कर सकता है, जो निम्नलिखित रूप में की जा सकती है – (i) विद्यालय से प्राप्त जन्म तारीख प्रमाणपत्र या संबंधित बोर्ड से मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, या उसके अभाव में ; (ii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र और उपरोक्त के अभाव में; (iii) आयु का अवधारण समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई अस्थि-विकास जांच या कोई अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधारण जांच के आधार पर किया जाएगा । समिति या बोर्ड द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की अभिलिखित आयु किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के प्रयोजनार्थ उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (3) में धारणा उपबंध भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाए गए बालक की आयु के संबंध में संविवाद या संदेह का निपटान स्वयंमेव किशोर न्याय बोर्ड या समिति के स्तर पर किया जाना ईप्सित है । (पैरा 47 और 48)

अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री द्विवेदी ने इस बात पर

बल दिया कि कक्षा 1 और कक्षा 8 के दाखिला प्ररूपों पर प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत के हस्ताक्षर एक-जैसे हैं और कक्षा 1 के दाखिला प्ररूप पर ऐसा नहीं हो सकता था क्योंकि निशांत की आयु उस समय केवल साढ़े चार वर्ष थी जब उसे कक्षा 1 में दाखिल किया गया था । किंतु वास्तविकता यह है कि वर्ष 2019 में जब निशांत ने कक्षा 10 पूर्ण की थी, तब मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उसकी जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 दर्शाई गई थी । अत: प्रत्यर्थी सं. 2 की आयु घटना की तारीख को केवल लगभग 15 वर्ष थी और किसी भी स्थिति में उसकी आयु 16 वर्ष से कम थी । इस अपील में अपीलार्थी द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई खंडनीय साक्ष्य नहीं लाया गया है कि यदि कक्षा 1 और कक्षा 8 में दाखिला लेने के लिए दस्तावेजों को विश्वसनीय न भी माना जाए या त्यक्त कर दिया जाए, तो भी वास्तविकता यह है कि संबंधित बोर्ड द्वारा जारी निशांत के मैट्रिकुलेशन से संबंधित अंक-सूची से यह उपधारणा उद्भूत होती है कि निशांत की आयु घटना की तारीख अर्थात् 5 मई, 2020 को 16 वर्ष से कम थी । इस अपील में अपीलार्थी द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई खंडनीय साक्ष्य नहीं लाया गया है कि यदि कक्षा 1 और कक्षा 8 में दाखिला लेने के लिए दस्तावेजों को विश्वसनीय न भी माना जाए या त्यक्त कर दिया जाए, तो भी वास्तविकता यह है कि संबंधित बोर्ड द्वारा जारी निशांत के मैट्रिकुलेशन से संबंधित अंक-सूची से यह उपधारणा उद्भूत होती है कि निशांत की आयु घटना की तारीख अर्थात् 5 मई, 2020 को 16 वर्ष से कम थी । इसके अतिरिक्त, प्रशासनिक अधिकारी, आंचलिक कार्यालय, मध्यवर्ती शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के तारीख 22 जुलाई, 2020 के पत्र से उसकी आयु 25 सितंबर, 2004 प्रकट होती है । प्रस्तुत मामले में, स्वीकृतत:, द्वितीय प्रत्यर्थी की मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उपदर्शित जन्म तारीख के प्रतिकूल उपदर्शित करते हुए कोई अन्य दस्तावेज नहीं है । इस प्रकार, इस मामले में जन्म तारीख के बारे में ऐसा कोई फर्क उद्भूत नहीं होता है । इस अपील में अपीलार्थी द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के विपरीत कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय इस मामले में उच्च न्यायालय के उस आदेश से भिन्न

मत व्यक्त करने के लिए तैयार नहीं हैं, जिसमें जिला और सेशन न्यायाधीश तथा किशोर न्याय बोर्ड के निर्णय को संधार्य रखा गया है । (पैरा 41, 42 और 46)

किशोरावस्था का दावा किसी दांडिक कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी, किया जा सकता है । किशोरावस्था का दावा करने में हुआ विलंब ऐसे दावे को नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकता है । इसे पहली बार इस न्यायालय के समक्ष भी किया जा सकता है । (ii) किशोरावस्था का दावा करने के लिए आवेदन या तो न्यायालय या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष किया जा सकता है । (iiक) जब किशोरावस्था का विवाद्यक किसी न्यायालय के समक्ष उद्भूत होता है, तो यह किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 9 की उपधारा (2) और (3) के अधीन होगा किंतु जब किसी व्यक्ति को किसी समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाया जाता है, तब किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 लागू होती है । (iiख) यदि किशोरावस्था का दावा करते हुए न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया जाता है, तो किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) के उपबंध को या इसके साथ पठित धारा 9 की उपधारा (2) को लागू करना होगा जिससे व्यक्ति की यथासंभव सन्निकट आयु का उल्लेख करते हुए निष्कर्ष अभिलिखित करने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य की ईप्सा की जा सके । (iiग) जब किशोरावस्था का दावा करते हुए आवेदन उस समय किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अधीन किया जाता है, जब अभिकथित अपराध कारित करने के संबंध में मामला किसी न्यायालय के समक्ष लंबित है, तब किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया लागू होगी । उक्त उपबंध के अधीन यदि किशोर न्याय बोर्ड के पास इस संबंध में संदेह करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो बोर्ड द्वारा साक्ष्य की ईप्सा करके उसके समक्ष लाए गए ऐसे व्यक्ति की आयु किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के प्रयोजन के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । अवधारण की प्रक्रिया करेगा और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा

अभिलिखित आयु होगी । इसलिए जब विचारण संबंधित दांडिक न्यायालय के समक्ष है तब किशोरावस्था के दावे की ईप्सा करते हुए आवेदन फाइल किया जाता है तो किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष ऐसी कार्यवाही में अपेक्षित सबूत की मात्रा उसकी बजाय उच्चतर होती है जब जांच उस न्यायालय द्वारा की जाती है जिसके समक्ष अपराध कारित करने के संबंध में मामला लंबित है (किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 9 देखें) । (iii) जब किशोरावस्था के लिए दावा किया जाता है, तब भार दावा करने वाले व्यक्ति पर है जिससे न्यायालय का आरंभिक भार के निर्वहन के लिए समाधान हो सके । तथापि, किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के अधीन बनाए गए किशोर न्याय नियम, 2007 के नियम 12(3)(क)(i), (ii) और (iii) या किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) में वर्णित दस्तावेज न्यायालय के समाधानप्रद प्रथमदृष्ट्या पर्याप्त होंगे । पूर्वोक्त दस्तावेजों के आधार पर किशोरावस्था की एक उपधारणा की जा सकेगी । (iv) तथापि, उक्त उपधारणा किशोरावस्था की आयु का निश्चायक सबूत नहीं है और विरोधी पक्ष द्वारा इसके विपरीत साक्ष्य प्रस्तुत करके इसका खंडन किया जा सकेगा । (v) किसी न्यायालय द्वारा की जाने वाली जांच की प्रक्रिया उस समय जब मामला संबंधित दांडिक न्यायालय के समक्ष लंबित है, तब किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष किशोर के रूप में व्यक्ति की आयु की घोषणा करने के समान नहीं है । जांच के मामले में, न्यायालय एक प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित करता है किंतु जब आयु का अवधारण किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) के अनुसार किया जाता है, तब यह घोषणा साक्ष्य के आधार पर की जाती है । यह भी कि, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा अभिलिखित की गई आयु को उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । इस प्रकार, जांच में सबूत का मानक उस मानक से भिन्न है जो उस कार्यवाही में अपेक्षित होता है जहां किसी व्यक्ति की आयु का अवधारण और उसकी घोषणा संवीक्षा किए गए और स्वीकृत साक्ष्य, केवल यदि वह साक्ष्य स्वीकार करने योग्य हो, के आधार पर की जानी होती है । (vi) किसी व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए एक निरपेक्ष सूत्र को

अभिकथित करना न तो व्यवहार्य और न ही वांछनीय है । यह अभिलेख पर सामग्री के आधार पर और प्रत्येक मामले में पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर किया जाना चाहिए । (vii) इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि तब एक अति तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए जब अभियुक्त की ओर से इस अभिवाक् के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है कि वह किशोर था । (viii) यदि एक-जैसे साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हों, तो न्यायालय का झुकाव सीमांत मामलों में अभियुक्त को एक किशोर होना अभिनिर्धारित करने के पक्ष में होना चाहिए । यह इस बात को सुनिश्चित करने के लिए है कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के फायदे को विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के लिए लागू किया गया है । साथ ही साथ, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 का व्यक्तियों द्वारा गंभीर अपराध कारित करने के पश्चात् दंड से बचने के लिए दुरुपयोग न हो । (ix) जब आयु का अवधारण विद्यालय अभिलेख जैसे साक्ष्य के आधार पर किया जाता है, तो यह आवश्यक है कि इस पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अनुसार विचार किया जाना होगा क्योंकि शासकीय कर्तव्य का निर्वहन करते हुए बनाया रखा गया कोई लोक या शासकीय दस्तावेज की प्राइवेट दस्तावेजों की बजाय अधिक विश्वसनीयता होगी । (x) कोई दस्तावेज जो लोक दस्तावेजों के समरूप है, जैसे कि मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र, उसे न्यायालय या किशोर न्याय बोर्ड द्वारा स्वीकार किया जा सकता है बशर्ते ऐसा लोक दस्तावेज भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के अनुसार अर्थात् धारा 35 और अन्य उपबंधों के अनुसार विश्वसनीय और प्रामाणिक हो । (xi) आयु का अवधारण करने के लिए अस्थि-विकास जांच एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता है और किसी व्यक्ति की आयु के संबंध में किसी यांत्रिक मत को मात्र विकिरण-चिकित्सा विज्ञान परीक्षण द्वारा दी गई चिकित्सीय राय के आधार पर नहीं अपनाया जा सकता है । ऐसा साक्ष्य निश्चायक साक्ष्य नहीं है किंतु किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94(2) में वर्णित दस्तावेजों के अभाव में विचार किया जाने वाला केवल एक अति उपयोगी मार्ग-दर्शक कारक है । (पैरा 29)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2021] 2021 क्रिमिनल ला जर्नल 2805 :
राम विजय सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 28

[2019] (2019) 12 एस. सी. सी. 370 :
संजीव कुमार गुप्ता बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ; 12, 28

[2016] (2016) 12 एस. सी. सी. 744 :
पराग भाटी (किशोर विधिक संरक्षक-माता-श्रीमती रजनी भाटी की मार्फत) बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ; 12, 28

[2015] (2015) 7 एस. सी. सी. 773 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम **अनूप सिंह** ; 16, 28

[2012] (2012) 9 एस. सी. सी. 750 :
अश्वनी कुमार सक्सेना बनाम **मध्य प्रदेश राज्य ;** 15, 28

[2012] (2012) 10 एस. सी. सी. 489 :
अबुजार हुसैन उर्फ **गुलाम हुसैन** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ; 12, 28

[2010] (2010) 3 एस. सी. सी. 757 :
जबर सिंह बनाम **दिनेश और एक अन्य** ; 28

[2008] (2008) 13 एस. सी. सी. 133 :
बब्लू पासी बनाम **झारखंड राज्य और अन्य** ; 16, 28

[2006] (2006) 9 एस. सी. सी. 428 :
जितेन्द्र राम बनाम **झारखंड राज्य** ; 28

[2000] (2000) 5 एस. सी. सी. 488 :
अर्नित दास बनाम **बिहार राज्य** ; 28

[1997] (1997) 8 एस. सी. सी. 720 :

भोला भगत और अन्य बनाम **बिहार राज्य** । 28

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2021 की दांडिक अपील सं. 1240.

2021 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 430 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 12 मार्च, 2021 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अनुपम द्विवेदी

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री शरण ठाकुर, अपर महाधिवक्ता और सौरभ त्रिवेदी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना ने दिया ।

न्या. नागरत्ना – अपीलार्थी ने यह अपील 2021 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 430 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 12 मार्च, 2021 को पारित किए गए उस आक्षेपित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, विशेष न्यायाधीश पोक्सो अधिनियम (अनन्य न्यायालय), बागपत, उत्तर प्रदेश द्वारा 2020 की दांडिक अपील सं. 27 को खारिज करते हुए तारीख 4 जनवरी, 2021 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल किए गए पूर्वोक्त दांडिक पुनरीक्षण को नामंजूर कर दिया था । उक्त दांडिक अपील प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, बागपत द्वारा पुलिस थाना, सिंघावली अहीर, जिला बागपत, उत्तर प्रदेश के भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 323, 307, 302 और 34 के अधीन 2020 के अपराध मामला सं. 116 से उद्भूत 2020 के प्रकीर्ण मामला सं. 16 को मंजूर करते हुए और अभियुक्त-निशांत सोलंकी **उर्फ** निशु (प्रत्यर्थी सं. 2) को एक किशोर अपचारी घोषित करते हुए तारीख 11 नवंबर, 2020 के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी ।

2. संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हुए, इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि एक दुर्घटना में, जो तारीख 5 अप्रैल, 2020 को लगभग 4.00 बजे अपराह्न में घटी थी, अन्य के साथ-साथ, प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत सोलंकी **उर्फ** निशु (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'निशांत' कहा गया

है) के साथ-साथ अन्य अभियुक्तों ने अभिकथित रूप से अपीलार्थी और उसके परिवार पर आक्रमण किया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें गंभीर क्षतियां पहुंचीं तथा अपीलार्थी के पिता भोपाल सिंह की मृत्यु हो गई, जिसे उसी दिन अर्थात् तारीख 5 मई, 2020 को डाक्टर द्वारा 'मृत लाया गया' घोषित किया गया था और उसके चाचा कालूराम की पूर्वोक्त घटना में उसे पहुंची गंभीर क्षतियों के कारण तारीख 9 मई, 2020 को मृत्यु हो गई थी ।

3. निशांत ने अपनी माता/नैसर्गिक संरक्षक-प्रत्यर्थी सं. 3 के माध्यम से किशोर न्याय बोर्ड, बागपत के समक्ष 2000 का प्रकीर्ण मामला सं. 16 में एक आवेदन फाइल किया जिसमें यह अनुरोध किया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2/अभियुक्त अर्थात् निशांत को एक किशोर अपचारी के रूप में घोषित किया जाए । उक्त आवेदन पर प्रत्यर्थी सं. 3, जो निशांत की माता और नैसर्गिक संरक्षक है, के माध्यम से साक्ष्य प्रस्तुत किया गया । इस बारे में पता चलने पर इस अपील में अपीलार्थी अपने काउंसेल के माध्यम से उक्त कार्यवाही में उपसंजात हुआ और तारीख 20 जुलाई, 2020 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन एक आवेदन करके प्रत्यर्थी सं. 3 की प्रतिपरीक्षा करने के लिए किशोर न्याय बोर्ड की अनुज्ञा की ईप्सा की । अपीलार्थी को तारीख 22 जुलाई, 2020 को ऐसा करने के लिए अनुज्ञात किया गया और उस तारीख को निशांत की माता की और आगे प्रतिपरीक्षा करने के लिए इस आवेदन को सूचीबद्ध किया गया । उक्त तारीख को अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 की और प्रतिपरीक्षा की गई ।

4. तारीख 10 अगस्त, 2020 को एक अन्य साक्षी मनोज कुमार, प्रधानाध्यापक, सरदार वल्लभभाई पटेल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, शाजरपुर, कैडना, जिला बागपत की भी प्रति. सा. 2 के रूप में परीक्षा की गई थी और तत्पश्चात् सुरेन्द्र कुमार सैनी, प्रधानाध्यापक, सर्वोदय पब्लिक स्कूल, खिंडोरा, जिला बागपत की प्रति. सा. 3 के रूप में परीक्षा की गई थी ।

5. पुलिस ने भी तारीख 22 जुलाई, 2020 को प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत सहित सभी अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147,

148, 149, 323, 307, 302 और 34 के अधीन एक आरोप पत्र फाइल किया ।

6. उक्त कार्यवाहियों में तारीख 9 सितंबर, 2020 को किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत की वास्तविक और सही आयु अभिनिश्चित करने के लिए उसकी चिकित्सीय जांच करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया । उक्त आवेदन को तारीख 14 सितंबर, 2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया और प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत की आयु के अवधारण के विवाद्यक पर सुनवाई के लिए मामले को 23 सितंबर, 2020 को सूचीबद्ध किए जाने का आदेश किया गया ।

7. प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत की चिकित्सीय जांच की ईप्सा करते हुए तारीख 9 सितंबर, 2020 के आवेदन की नामंजूरी से व्यथित होकर इस अपील में अपीलार्थी ने जिला और सेशन न्यायाधीश, बागपत के समक्ष एक दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया और उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन, 2000 का अंतरण आवेदन (दांडिक) सं. 158, फाइल किया जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, किशोर न्याय बोर्ड, बागपत के समक्ष लंबित 2020 के प्रकीर्ण मामला सं. 16 में की कार्यवाहियों को राज्य के किसी अन्य किशोर न्याय बोर्ड को अंतरित करने का अनुरोध किया गया ।

8. उच्च न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान, किशोर न्याय बोर्ड, बागपत ने तारीख 11 नवंबर, 2020 के आदेश द्वारा निशांत की माता प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा फाइल किए गए आवेदन, 2020 के प्रकीर्ण मामला सं. 16, को मंजूर किया और निशांत को एक किशोर अपचारी के रूप में घोषित किया । अपीलार्थी ने उक्त आदेश को चुनौती देते हुए किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'किशोर न्याय अधिनियम, 2015' कहा गया है) की धारा 101 के अधीन जिला और सेशन न्यायधीश, बागपत के समक्ष एक अपील (2020 की दांडिक अपील सं. 27) फाइल की । उक्त न्यायालय ने तारीख 4 जनवरी, 2021 के अपने निर्णय द्वारा उक्त अपील को खारिज कर दिया, जिसके विरुद्ध अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2021 का दांडिक पुनरीक्षण

आवेदन सं. 430 फाइल किया । उक्त दांडिक पुनरीक्षण आवेदन को भी उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 12 मार्च, 2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा नामंजूर कर दिया गया । इससे व्यथित होकर, अपीलार्थी ने विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की है ।

9. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री अनुपम द्विवेदी, प्रत्यर्थी-उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री शरण ठाकुर और प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सौरभ त्रिवेदी को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

10. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री द्विवेदी ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 2 अन्य सह-अभियुक्तों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 323, 307, 302 और 34 के अधीन गंभीर अपराध कारित करने का अभियुक्त था, किंतु प्रत्यर्थी सं. 2 ने किशोरावस्था का दावा करते हुए एक आवेदन फाइल किया था और किशोर न्याय बोर्ड, बागपत द्वारा इस आवेदन को गलत रूप से मंजूर किया गया था और उस आदेश को अपील न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था । यह दलील दी गई कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से परीक्षा कराए गए साक्षियों के साक्ष्य में, विशिष्ट रूप से उसकी माता के साक्ष्य में, उसकी जो जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 बताई गई है, उसके विषय में विरोधाभास हैं किंतु उसे विधि के अनुसार सिद्ध नहीं किया गया है । विद्यालय में दाखिला लेने के लिए प्ररूप (उपाबंध पी-11) को प्रदर्श ए-8 के रूप में यह दर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया गया था कि इस पर प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत द्वारा उस समय हस्ताक्षर किए गए थे जब वह तात्पर्यित रूप से चार वर्ष की आयु का था । प्रदर्श ए-9 (उपाबंध पी-12) वह दस्तावेज बताया गया है, जिस पर प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत द्वारा उस समय हस्ताक्षर किए गए थे जब उसकी आयु बारह वर्ष थी । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि इन दोनों दस्तावेजों पर हस्ताक्षर एक-जैसे हैं । अत: उक्त दस्तावेजों की असलियत के बारे में गंभीर संदेह है और इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा किए गए किशोरावस्था के दावे के समर्थन में इन

दस्तावेजों का अवलंब नहीं लिया जा सकता था ।

11. प्रदर्श ए-8 में, हमारा ध्यान स्तंभ सं. 15 जिसमें छात्र का आधार संख्यांक भरे जाने की अपेक्षा की गई है, की ओर यह दलील देने के लिए दिलाया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2 के दाखिले की ईप्सा करते हुए उक्त प्ररूप कथित रूप से तारीख 2 जुलाई, 2009 को प्रस्तुत किया गया था । जुलाई, 2001 में यूआईडी/आधार संख्यांक देने की अपेक्षा करने की बात कतई उद्भूत नहीं होती है, क्योंकि यह संख्यांक पहली बार केवल तारीख 29 सितंबर, 2010 को नंदुरबार, महाराष्ट्र के एक निवासी को जारी किया गया था । यह दलील दी गई कि प्रदर्श ए-8 (उपाबंध पी-11) प्रत्यर्थी सं. 2 की आयु का दुर्व्यपदेशन करने और तद्द्वारा किशोरावस्था का दावा करने के लिए गढ़ा गया है । यह भी दलील दी गई कि यदि प्रत्यर्थी सं. 2 ने वर्ष 2009 में, जब उसकी आयु पांच वर्ष से कम थी, कक्षा 1 में दाखिले की ईप्सा की थी, तो केवल पांच वर्ष की अवधि के पश्चात् वह कक्षा 8 में दाखिला नहीं ले सकता था । इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि वह कक्षा 1 में दाखिला लेने के केवल पांच वर्षों के पश्चात् कैसे कक्षा 8 में दाखिला ले सकता था । यह भी दलील दी गई कि प्रति. सा. 3, प्राथमिक विद्यालय के मुख्याध्यापक ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया था कि कक्षा 1 और कक्षा 8 के दाखिला प्ररूपों पर निशांत के हस्ताक्षर एक-जैसे हैं । अत: यह दलील दी गई कि यह संदेहास्पद है कि कैसे एक बच्चा, जिसकी आयु लगभग चार वर्ष थी (यदि वास्तव में प्रत्यर्थी सं. 2 की जन्म की तारीख 25 सितंबर, 2004 थी) उस समय विद्यालय के दाखिला प्ररूप पर अपने नाम का हस्ताक्षर कर सकता था, जब उसने कक्षा 1 में दाखिला लिया था । यह दलील दी गई कि यह हस्ताक्षर कूटरचित है क्योंकि कोई बालक, जिसकी आयु चार वर्ष है, विद्यालय में दाखिला लेने के प्ररूप पर अपने नाम का हस्ताक्षर करने में समर्थ नहीं होगा और दूसरी बात यह कि उस आयु में कक्षा 1 में दाखिला भी नहीं लिया जा सकता था ।

12. यह दलील दी गई कि किशोर न्याय बोर्ड ने किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 के पीछे के विधायी आशय का यह घोषणा करते हुए मूल्यांकन नहीं किया था कि किशोर की आयु का

अवधारण करने के लिए मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र, साक्षियों के मौखिक परिसाक्ष्य या प्रस्तुत किए गए अन्य दस्तावेजों में अन्य तात्विक विसंगतियों की बात को ध्यान में लाए बिना, एक निश्चायक दस्तावेज है । उक्त दलील के समर्थन में, **पराग भाटी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1], **संजीव कुमार गुप्ता** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] और **अबुजार हुसैन** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3] वाले मामलों का अवलंब लिया गया ।

13. यह भी दलील दी गई कि पूर्वोक्त मामलों में अभियुक्तों के किशोर होने के दावे को साक्ष्य में आए फर्क के कारण इस बात के होते हुए नामंजूर कर दिया गया था कि उन मामलों में अभियुक्तों को जारी किए गए मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र के अनुसार वे किशोर थे । दूसरे शब्दों में, यह दलील दी गई कि मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में दर्शायी गई आयु को वहां दृश्यमान रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता है, यदि ऐसा अन्य साक्ष्य है जिससे उसका खंडन होता है । इसलिए यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश, अपील न्यायालय का निर्णय और किशोर न्याय बोर्ड, बागपत द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाए और प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत की ओर से फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया जाए ।

14. उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से अपर महाधिवक्ता, श्री शरण ठाकुर ने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की दलीलों का समर्थन किया और यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा अवलंब लिए गए मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र को संलग्न दस्तावेज के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, भले ही मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उपदर्शित निशांत की आयु प्रदर्श ए-8 और ए-9 में उपदर्शित आयु से मेल खाती हो । यह दलील दी गई कि इन दस्तावेजों को दृश्यमान रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उक्त प्रदर्शों पर निशांत द्वारा किए गए हस्ताक्षर

---

[1] (2016) 12 एस. सी. सी. 744.

[2] (2019) 12 एस. सी. सी. 370.

[3] (2012) 10 एस. सी. सी. 489.

नहीं हो सकते थे । वे हस्ताक्षर उस आयु के अनुरूप भी नहीं हैं जिस आयु में निशांत को विद्यालय में दाखिल कराया गया होगा और अपनी मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पूर्ण की होगी । अत: यह दलील दी गई कि आक्षेपित आदेशों अर्थात् उच्च न्यायालय के आदेश तथा विद्वान् जिला न्यायाधीश और किशोर न्याय बोर्ड के आदेश को अपास्त किया जाए ।

15. प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सौरभ त्रिवेदी ने यह दलील दी कि निशांत का जन्म 25 सितंबर, 2004 को हुआ था और घटना की तारीख अर्थात् 5 मई, 2020 को उसकी आयु केवल 15 वर्ष और 8 माह होने के कारण वह एक अप्राप्तवय था । प्रारंभ में, उसने गांव में एक प्राइवेट विद्यालय में पढ़ाई की और वर्ष 2009 में उसे कक्षा-1 में दाखिल कराया गया ; उसने कक्षा 6, 7 और 8 सर्वोदय पब्लिक जूनियर हाई स्कूल, गांव खिंडोदा, जिला बागपत से उत्तीर्ण की और तारीख 31 मार्च, 2017 को एक विद्यालय स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्राप्त किया जिसमें उसकी जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 दर्शायी गई थी ; निशांत ने तारीख 4 जुलाई, 2017 को सरदार वल्लभभाई पटेल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, खंजरपुर खादर, जिला बागपत में दाखिला लिया और अपनी उच्च विद्यालय की पढ़ाई पूर्ण की और 85 प्रतिशत अंकों के साथ बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण की । उत्तर प्रदेश राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने दसवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा पूर्ण होने पर एक उच्च विद्यालय प्रमाणपत्र जारी किया था जिसमें उसकी जन्म की तारीख 25 सितंबर, 2004 दर्शायी गई थी । अत: घटना की तारीख अर्थात् 5 मई, 2020 को प्रत्यर्थी सं. 2 एक किशोर था और इसलिए किशोर न्याय बोर्ड तथा उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत के मामले का ठीक ही मूल्यांकन किया था और किशोरावस्था का दावा करते हुए उसके आवेदन को मंजूर किया था । यह दलील दी गई कि मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र या उक्त परीक्षा संचालित करने वाले बोर्ड द्वारा जारी प्रमाणपत्र (उपाबंध पी-15) किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की अपेक्षाओं के अनुसार किशोर की आयु का पर्याप्त सबूत है । **अश्वनी कुमार सक्सेना** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले का यह दलील देने

[1] (2012) 9 एस. सी. सी. 750.

के लिए अवलंब लिया गया कि मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र एक ऐसा दस्तावेज है, जिसका किशोर अभियुक्त की आयु का अवधारण करने के लिए पूरी तरह से अवलंब लिया जा सकता है । अत: इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है ।

16. आगे यह भी दलील दी गई कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी सं. 2 की आयु का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ उसके अस्थि-विकास जांच की मांग नहीं कर सकता है क्योंकि यह जांच आयु का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ निश्चायक नहीं है (**बब्लू पासी** बनाम **झारखंड राज्य और अन्य**[1] और **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **अनूप सिंह**[2] वाले मामले देखें) ।

17. यह आग्रह किया गया कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत के पक्षकथन को नकारने में सफल नहीं रहा है, जो घटना की तारीख को किशोर होने के कारण किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के उपबंधों के अधीन संपूर्ण संरक्षण का हकदार है । यह दलील दी गई कि इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाए ।

18. किशोर न्याय अधिनियम, 2015 किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'किशोर न्याय अधिनियम, 2000' कहा गया है), जिसे निरसित कर दिया गया है, का अनुवर्ती है । किशोर न्याय अधिनियम, 2000 में 2006 के अधिनियम सं. 33 द्वारा तारीख 22 अगस्त, 2006 से एक संशोधन किया गया था, जिसके अधीन धारा 7क अंत:स्थापित की गई थी, जो निम्न प्रकार से है :–

> "**7क. किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा किए जाने पर अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया** – (1) जब कभी किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का कोई दावा किया जाता है या न्यायालय की यह राय है कि अभियुक्त व्यक्ति अपराध कारित होने की तारीख को किशोर था, तब न्यायालय ऐसे व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए जांच करेगा, ऐसा साक्ष्य लेगा जो

---

[1] (2008) 13 एस. सी. सी. 133.

[2] (2015) 7 एस. सी. सी. 773.

आवश्यक हो (किंतु शपथपत्र पर नहीं) और इस बारे में उसकी निकटतम आयु का उल्लेख करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित करेगा कि वह व्यक्ति किशोर या बालक है अथवा नहीं :

परंतु किशोरावस्था का दावा किसी न्यायालय के समक्ष किया जा सकेगा और उसे किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि मामले में अंतिम निपटान के पश्चात् भी, मान्यता दी जाएगी और ऐसे दावे का इस अधिनियम में और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अनुसार अवधारण किया जाएगा, भले ही उसकी किशोरावस्था इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले समाप्त हो गई हो ।

(2) यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन अपराध कारित करने की तारीख को किशोर था, तो वह उस किशोर को समुचित आदेश पारित किए जाने के लिए बोर्ड के पास भेजेगा और यदि न्यायालय द्वारा कोई दंडादेश पारित किया गया है तो यह समझा जाएगा कि उसका कोई प्रभाव नहीं है ।"

उक्त अधिनियम की धारा 49 निम्न प्रकार से है :–

"**49. आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण** – (1) जहां सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन उसके समक्ष (साक्ष्य देने के प्रयोजनार्थ से अन्यथा) लाया गया व्यक्ति किशोर या बालक है, वहां सक्षम प्राधिकारी उस व्यक्ति की आयु के बारे में सम्यक् जांच करेगा और उस प्रयोजन के लिए ऐसा साक्ष्य लेगा (किंतु शपथपत्र नहीं) जो आवश्यक हो और उस व्यक्ति की आयु यथाशक्य निकटतम रूप से कथित करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित करेगा कि वह व्यक्ति किशोर या बालक है या नहीं ।

2. सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि तत्पश्चात् यह साबित हुआ है कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में उसके द्वारा आदेश किया गया है,

किशोर या बालक नहीं है और इस प्रकार उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु के रूप में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित आयु उस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी ।"

19. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2007 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'किशोर न्याय नियम, 2007' कहा गया है) के नियम 12 में आयु का अवधारण करने के लिए प्रक्रियाएं विहित की गई हैं । नियम 12 निम्न प्रकार से है :–

"**12. आयु का अवधारण करने के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया** – (1) किसी बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर से संबंधित प्रत्येक मामले में, न्यायालय या बोर्ड या, यथास्थिति, इन नियमों के नियम 19 में निर्दिष्ट समिति द्वारा ऐसे किशोर या बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर की आयु का अवधारण उस प्रयोजन के लिए आवेदन करने की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर किया जाएगा ।

(2) न्यायालय या बोर्ड या, यथास्थिति, समिति द्वारा किशोर की किशोरावस्था या अन्यथा का या बालक होने या, यथास्थिति, विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के बारे में विनिश्चय प्रथमदृष्ट्या शारीरिक प्रतीति या दस्तावेजों के आधार पर, यदि उपलब्ध हों, किया जाएगा और उसे संप्रेषण गृह या जेल में भेजेगा ।

(3) किसी बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर से संबंधित प्रत्येक मामले में, आयु के अवधारण की जांच न्यायालय या बोर्ड या, यथास्थिति, समिति द्वारा निम्नलिखित साक्ष्य अभिप्राप्त करके की जाएगी –

(क) (i) मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, और उसके अभाव में ;

(ii) प्रथम बार दाखिला लिए गए विद्यालय (बाल विद्यालय से भिन्न) के जन्म प्रमाणपत्र की तारीख और उसके अभाव में ;

(iii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र ;

(ख) और केवल उपरोक्त खंड (क) के (i), (ii) या (iii) के अभाव में, किसी सम्यक् रूप से गठित चिकित्सा बोर्ड से चिकित्सीय राय की ईप्सा की जाएगी, जिसमें किशोर या बालक की आयु की घोषणा की जाएगी । यदि आयु का सही निर्धारण नहीं किया जा सकता है, तो न्यायालय या बोर्ड या, यथास्थिति, समिति उनके द्वारा लेखबद्ध किए गए कारणों से, यदि आवश्यक समझे, बालक या किशोर को एक वर्ष के मार्जिन के भीतर निम्नतर आधार पर ऐसे बालक या बालिका की आयु पर विचार करते हुए फायदा दे सकेगा, और ऐसे मामले में आदेश पारित करते समय, यथास्थिति, ऐसे साक्ष्य पर विचार करते हुए, जो उपलब्ध हो सके, या चिकित्सीय राय पर विचार करने के पश्चात् उसकी आयु के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित करेगा और खंड (क) (i), (ii), (iii) के किसी खंड में विनिर्दिष्ट किसी साक्ष्य या उसके अभाव में खंड (ख) में विनिर्दिष्ट साक्ष्य ऐसे बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर की आयु का निश्चायक सबूत होगा ।

4. यदि किसी किशोर या बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर की आयु अपराध करने की तारीख को 18 वर्ष से कम पाई जाती है, तो उप नियम (3) में विनिर्दिष्ट किसी निश्चायक सबूत के आधार पर न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति लिखित में आयु का उल्लेख करते हुए और किशोरावस्था या अन्यथा प्रास्थिति की घोषणा करते हुए अधिनियम और इन नियमों के प्रयोजनार्थ आदेश पारित करेगा और आदेश की एक प्रति ऐसे किशोर या संबंधित व्यक्ति को दी जाएगी ।

(5) वहां के सिवाय, जहां अन्य बातों के साथ-साथ, अधिनियम की धारा 7क, धारा 64 और इन नियमों के निबंधनों के अनुसार आगे किसी जांच की आवश्यकता हो,

न्यायालय या बोर्ड द्वारा जांच करने और इस नियम के उप नियम (3) में निर्दिष्ट प्रमाणपत्र या कोई अन्य दस्तावेजी सबूत अभिप्राप्त करने के पश्चात् आगे कोई जांच नहीं की जाएगी ।

(6) इस नियम में अंतर्विष्ट उपबंध ऐसे निपटाए जा चुके मामलों पर भी लागू होंगे, जहां किशोरावस्था की प्रास्थिति का अवधारण उप नियम (3) और अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार नहीं किया गया है ।"

20. किशोर न्याय नियम, 2007 का नियम 12 आयु का अवधारण करने के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में है । विधि का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की किशोरावस्था का विनिश्चय प्रथमदृष्ट्या शारीरिक प्रतीति या दस्तावेजों, यदि उपलब्ध हों, के आधार पर किया जाएगा । किंतु न्यायालय या किशोर न्याय बोर्ड द्वारा आयु का अवधारण करने के लिए जांच (i) मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, और उसके अभाव में ; (ii) प्रथम बार दाखिला लिए गए विद्यालय (बाल विद्यालय से भिन्न) से प्राप्त जन्म प्रमाणपत्र की तारीख से और उसके अभाव में ; (iii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिए गए जन्म प्रमाणपत्र का साक्ष्य अभिप्राप्त करके की जाएगी । केवल उपरोक्त (i), (ii) और (iii) में से किसी के अभाव में, किशोर या बालक की आयु की घोषणा करने के लिए किसी सम्यक् रूप से गठित चिकित्सा बोर्ड से चिकित्सीय राय की ईप्सा की जा सकती है । यह भी उपबंधित किया गया था कि जब अवधारण किया जा रहा हो, तब बालक या किशोर को एक वर्ष के मार्जिन के भीतर कमतर आयु होने की बात पर विचार करते हुए फायदा दिया जा सकता है । यदि विधि का उल्लंघन करने वाला कोई किशोर 18 वर्ष से कम आयु का होना पाया जाता है, तो न्यायालय द्वारा किशोरावस्था की प्रास्थिति की घोषणा करते हुए आदेश पारित किया जाना होगा । उक्त प्रक्रिया उन निपटारा किए जा चुके मामलों पर भी लागू थी, जहां किशोरावस्था की प्रास्थिति का अवधारण अधिनियम और उसके बनाए गए नियमों के अनुसार नहीं किया गया था ।

21. किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के निरसित हो जाने और किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के प्रवृत्त होने पर जब किसी बोर्ड के बजाय किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा किया जाता है, तब इस संबंध में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया धारा 9 (2) और (3) में अनुबंधित की गई है । यह प्रक्रिया निम्न प्रकार से है :–

> "(2) यदि वह व्यक्ति, जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसने अपराध किया है, बोर्ड से भिन्न किसी न्यायालय के समक्ष यह दावा करता है कि वह व्यक्ति बालक है या अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, या यदि न्यायालय की स्वयं यह राय है कि वह व्यक्ति अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, तो उक्त न्यायालय उस व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए ऐसी जांच करेगा, ऐसा साक्ष्य लेगा, जो आवश्यक हो (किंतु शपथपत्र नहीं) और उस व्यक्ति की यथासंभव निकटतम आयु का उल्लेख करते हुए मामले के निष्कर्ष अभिलिखित करेगा :
>
> परंतु ऐसा कोई दावा किसी न्यायालय के समक्ष किया जा सकेगा और उसके किसी भी प्रक्रम पर, मामले का अंतिम रूप से निपटारा हो जाने के पश्चात् भी, स्वीकार किया जाएगा और उस दावे का अवधारण इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किया जाएगा, भले ही वह व्यक्ति इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पूर्व बालक न रह गया हो ।
>
> (3) यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किसी व्यक्ति ने अपराध किया है और वह ऐसा अपराध किए जाने की तारीख को बालक था, तो वह उस बालक को बोर्ड के पास समुचित आदेश पारित करने के लिए भेजेगा और न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश के बारे में, यदि कोई हो, यह समझा जाएगा कि उसका कोई प्रभाव नहीं है ।"

किशोरावस्था का अवधारण करने के लिए किशोर न्याय नियम, 2007 के नियम 12 जैसा कोई तत्समान नियम नहीं है ।

22. दूसरी ओर, किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अधीन एक उपधारणा की गई है कि जब किसी व्यक्ति को किशोर न्याय बोर्ड या बाल कल्याण समिति (संक्षेप में 'समिति') के समक्ष (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) लाया जाता है और उक्त व्यक्ति बालक है, तो किशोर न्याय बोर्ड या समिति बालक की यथासंभव सन्निकट आयु का उल्लेख करते हुए ऐसे संप्रेषण को अभिलिखित करेगा तथा आयु के बारे में और अभिपुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना, यथास्थिति, धारा 14 या धारा 36 के अधीन जांच करेगा । किंतु जहां उक्त बोर्ड या समिति के पास इस संबंध में संदेह होने के युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो, यथास्थिति, समिति या बोर्ड निम्नलिखित ईप्सित साक्ष्य अभिप्राप्त करके आयु अवधारण की प्रक्रिया करेगा :–

(i) विद्यालय से प्राप्त जन्म तारीख प्रमाणपत्र या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, और उसके अभाव में ;

(ii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र ;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) के अभाव में, आयु का अवधारण समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई अस्थि-विकास जांच या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधारण जांच के आधार पर किया जाएगा :

परंतु समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई ऐसी आयु अवधारण जांच ऐसे आदेश की तारीख से पंद्रह दिन के भीतर पूरी की जाएगी । समिति या बोर्ड द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की अभिलिखित आयु इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । तुरंत संदर्भ के लिए, किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"94. **आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण** – (1) जहां बोर्ड या समिति को, इस अधिनियम के किसी उपबंध के

अधीन (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) उसके समक्ष लाए गए किसी व्यक्ति की प्रतीति के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उक्त व्यक्ति बालक है, तो समिति या बोर्ड बालक की यथासंभव सन्निकट आयु का उल्लेख करते हुए ऐसे संप्रेषण को अभिलिखित करेगा तथा आयु की और अभिपुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना, यथास्थिति, धारा 14 या धारा 36 के अधीन जांच करेगा ।

(2) यदि समिति या बोर्ड के पास इस संबंध में संदेह होने के युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो, यथास्थिति, समिति या बोर्ड निम्नलिखित ईप्सित साक्ष्य अभिप्राप्त करके आयु अवधारण की प्रक्रिया का जिम्मा लेगा –

(i) विद्यालय से प्राप्त जन्म तारीख प्रमाणपत्र या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, और उसके अभाव में ;

(ii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र ;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) के अभाव में, आयु का अवधारण समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई अस्थि-विकास जांच या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधारण जांच के आधार पर किया जाएगा :

परंतु समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई ऐसी आयु अवधारण जांच ऐसे आदेश की तारीख से पंद्रह दिन के भीतर पूरी की जाएगी ।

(3) समिति या बोर्ड द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की अभिलिखित आयु इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी ।"

23. किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 7क, जो तारीख 22 अगस्त, 2006 से एक संशोधन द्वारा अंत:स्थापित की गई थी, के

अधीन यह अभिवाक् करते हुए किशोरावस्था का दावा करने के लिए उपबंध किया गया था कि अभियुक्त व्यक्ति अपराध के कारित होने की तारीख को किशोर था और ऐसे किसी मामले में अभिलेख पर साक्ष्य लेने के उपरांत न्यायालय द्वारा, किसी किशोर न्याय बोर्ड से भिन्न, ऐसे व्यक्ति की आयु के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना था । किशोरावस्था का दावा किसी भी न्यायालय के समक्ष किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि मामले के अंतिम रूप से निपटान के पश्चात् भी किया जा सकता था और ऐसे दावे का अवधारण उक्त अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के निबंधनों के अनुसार किया जाना था । यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष हो कि कोई व्यक्ति किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 7क की उपधारा (1) के अधीन अपराध कारित होने की तारीख को किशोर था, तो उस किशोर को समुचित आदेश पारित किए जाने के लिए बोर्ड के पास भेजना होता था और यदि न्यायालय द्वारा कोई दंडादेश पारित किया गया है तो उसका कोई प्रभाव नहीं था । तथापि, किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के अधीन किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 7क के समरूप उपबंध उक्त अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2) के रूप में है, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है ।

24. इसके अतिरिक्त, किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 49 के असदृश किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 में आयु के संबंध में उपधारणा और उसका अवधारण करने का उपबंध किया गया है, यदि किशोर न्याय बोर्ड या समिति के पास इस संबंध में संदेह होने के युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तब वह निम्नलिखित ईप्सित साक्ष्य अभिप्राप्त करके आयु अवधारण की प्रक्रिया करेगा :–

(i) विद्यालय से प्राप्त जन्म तारीख प्रमाणपत्र या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, और उसके अभाव में ;

(ii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र ;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) के अभाव में, आयु का

अवधारण समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई अस्थि-विकास जांच या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधारण जांच के आधार पर किया जाएगा ।

25. दोनों अधिनियमितियों के अधीन निम्नलिखित अंतर देखा जा सकता है :–

(i) किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के अनुसार, धारा 94(क) और (ख) की उपधारा (2) में यथावर्णित अपेक्षित दस्तावेजों के अभाव में, अस्थि-विकास जांच या आयु का अवधारण करने से संबंधित किसी अन्य चिकित्सीय रूप से जांच द्वारा आयु का अवधारण किए जाने का उपबंध है, जो जांच उक्त अधिनियम की धारा 94 के अनुसार समिति या किशोर न्याय बोर्ड के आदेशों पर की जाएगी ; जबकि किशोर न्याय नियम, 2007 के नियम 12 के अधीन, सुसंगत दस्तावेजों के अभाव में एक सम्यक् रूप से गठित चिकित्सा बोर्ड से चिकित्सीय राय ली जानी थी, जो किशोर या बालक की आयु की घोषणा करेगा ।

(ii) साक्ष्य के रूप में दिए जाने वाले दस्तावेजों के संबंध में, किशोर न्याय नियम, 2007 के नियम 12 के अधीन जो उपबंधित था, उसे किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) के अधीन एक सारभूत उपबंध के रूप में उपबंधित किया गया है ।

(iii)किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की उपधारा 49 के अधीन, जहां सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता था कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति किशोर या बालक है, तब ऐसा प्राधिकारी जांच करने और ऐसा साक्ष्य लेने के पश्चात्, जो आवश्यक हो, ऐसे व्यक्ति की किशोरावस्था के बारे में निष्कर्ष अभिलिखित करेगा और उस व्यक्ति की यथाशक्य निकटतम आयु का उल्लेख करेगा । धारा 49 की उपधारा (2) में यह उल्लेख किया गया था कि सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि तत्पश्चात् यह साबित हुआ है कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में उसके द्वारा आदेश किया गया है, किशोर नहीं है

और सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की आयु के रूप में उसके द्वारा अभिलिखित आयु उस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी ।

26. किंतु किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 जो आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण करने के संबंध में है, के अधीन समिति या किशोर न्याय बोर्ड बालक की यथासंभव सन्निकट आयु का उल्लेख करते हुए ऐसे संप्रेषण को अभिलिखित करेगा और आयु के बारे में और आगे अभिपुष्टि किए बिना जांच की कार्यवाही करेगा । केवल तब जब समिति या किशोर न्याय बोर्ड के पास इस संबंध में संदेह करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो वह साक्ष्य की ईप्सा करके आयु अवधारण की प्रक्रिया कर सकता है ।

27. धारा 94 की उपधारा (3) में यह उपबंधित है कि समिति या किशोर न्याय बोर्ड द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की अभिलिखित आयु इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । अतः, इस प्रकार अभिलिखित आयु के अवधारण को अंतिमता प्रदान की गई है और केवल उस दशा में, जहां यह संदेह करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या समिति या बोर्ड के समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, वहां साक्ष्य की ईप्सा करके आयु अवधारण की प्रक्रिया की जानी चाहिए ।

28. इस प्रक्रम पर विचाराधीन उपबंधों पर सुसंगत विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया जा सकता है :–

(क) **अश्वनी कुमार सक्सेना** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की थी कि किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 7क के अधीन न्यायालय को जांच करने के लिए आबद्धकर किया गया है न कि दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन अन्वेषण या विचारण करने के लिए । न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में अपनी राय व्यक्त की थी –

"34. .....ऐसी स्थितियां हो सकती हैं, जहां मैट्रिकुलेशन या

समतुल्य प्रमाणपत्रों में, प्रथम बार दाखिला लिए गए विद्यालय से प्राप्त जन्म तारीख प्रमाणपत्र में और यहां तक कि किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिए गए जन्म प्रमाणपत्र में जन्म की तारीख सही न हो । किंतु न्यायालय से, किशोर न्याय बोर्ड से या किशोर न्याय अधिनियम के अधीन कार्य करने वाली समिति से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वह ऐसी कोई चलती-फिरती (निरुद्देश्य) जांच करे और उन दस्तावेजों की शुद्धता की परीक्षा करने के लिए उन प्रमाणपत्रों पर विचार करे जो कारबार के सामान्य अनुक्रम के दौरान रखे गए हैं । केवल उन मामलों में, जहां उन दस्तावेजों या प्रमाणपत्रों को गढ़ा हुआ या छलसाधित पाया जाता है, तो न्यायालय, किशोर न्याय बोर्ड या समिति को आयु अवधारण के लिए चिकित्सीय रिपोर्ट प्राप्त करने की आवश्यकता है ।"

(ख) **अबुजार हुसैन** उर्फ **गुलाम हुसैन** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के एक अन्य विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है, जिसका सारांश निम्नलिखित है :–

"39.1 किशोरावस्था का दावा किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी, किया जा सकता है । यह दावा मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् प्रथम बार इस न्यायालय के समक्ष भी किया जा सकता है । किशोरावस्था का दावा करने में हुआ विलंब ऐसे दावे को नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकता है । किशोरावस्था का दावा अपील में किया जा सकता है, भले ही ऐसा दावा विचारण न्यायालय के समक्ष न किया गया हो और पहली बार इस न्यायालय के समक्ष किया जा सकता है, भले ही ऐसा दावा विचारण न्यायालय या अपील न्यायालय के समक्ष न किया गया हो ।

39.2 दोषसिद्धि के पश्चात् किशोरावस्था के संबंध में दावा करने के लिए, दावेदार को अवश्य कोई ऐसी सामग्री प्रस्तुत करनी चाहिए जिससे न्यायालय का प्रथमदृष्ट्या यह समाधान हो सके कि किशोरावस्था के दावे में जांच करना आवश्यक है । आरंभिक भार

का निर्वहन उस व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जो किशोरावस्था का दावा करता है ।

39.3 किस सामग्री से प्रथमदृष्टया न्यायालय का समाधान होगा और/या आरंभिक भार का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त है, उसे सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता है और न ही यह अधिकथित किया जा सकता है कि किसी विनिर्दिष्ट साक्ष्य को कितना महत्व दिया जाना चाहिए जो किशोरावस्था की उपधारणा करने के लिए पर्याप्त हो, किंतु नियम 12(3)(क)(i) से (iii) में निर्दिष्ट दस्तावेज नियम 12 के अधीन और आगे जांच को आवश्यक बनाने के लिए अपचारी की आयु के बारे में न्यायालय का प्रथमदृष्टया समाधान करने के लिए निश्चित रूप से पर्याप्त होंगे । संहिता की धारा 313 के अधीन तारीख 22 अक्तूबर, 2021 को अभिलिखित कथन (12 पृष्ठों में का पृष्ठ 6) बहुत ही अनंतिम है और किशोरावस्था के दावे को मामूली तौर पर न्यायोचित ठहराने या नामंजूर करने के लिए स्वयमेव पर्याप्त नहीं हो सकता है । दोषसिद्धि के पश्चात् अभिप्राप्त किया गया विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र या मतदाता सूची आदि जैसे दस्तावेजों की विश्वसनीयता और/या स्वीकार्यता प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी और ऐसा कोई कठोर नियम विहित नहीं किया जा सकता है कि उन्हें अवश्य प्रथमदृष्टया स्वीकार या नामंजूर किया जाना चाहिए । अकबर शेख [(2009) 7 एस. सी. सी. 415] और पवन [(2009) 15 एस. सी. सी. 259] वाले मामलों में ये दस्तावेज प्रथमदृष्टया विश्वसनीय नहीं पाए गए थे, जबकि जितेन्द्र सिंह [(2010) 13 एस. सी. सी. 523] वाले मामले में दस्तावेज अर्थात् विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र, अंकतालिका और चिकित्सीय रिपोर्ट को अपीलार्थी की आयु की जांच और सत्यापन करने का निदेश देने के लिए पर्याप्त समझा गया था । यदि ऐसे दस्तावेजों से प्रथम-दृष्ट्या न्यायालय का विश्वास प्रेरित होता है, तो न्यायालय धारा 7क के प्रयोजनार्थ ऐसे दस्तावेजों के आधार पर कार्यवाही कर सकता है और अपचारी की आयु का अवधारण करने के लिए जांच का आदेश दे सकता है ।

39.4 प्रथम बार अपील में या पुनरीक्षण में या इस न्यायालय के समक्ष मामले के लंबित रहने के दौरान या मामले के निपटान के पश्चात् दावेदार का या माता-पिता में से किसी का या किसी सहोदर भाई या बहन या किसी नातेदार का किशोरावस्था के समर्थन में शपथपत्र ऐसे व्यक्ति की आयु के अवधारण के लिए जांच को न्यायोचित ठहराने के लिए तब तक पर्याप्त नहीं होगा जब तक कि मामले की परिस्थितियां इतनी स्पष्ट न हों कि अपचारी की आयु के अवधारण की जांच का आदेश देने के लिए न्यायालय की न्यायिक अंतश्चेतना का समाधान न हो जाए ।

39.5 न्यायालय को, जहां किशोरावस्था का अभिवाक् प्रथम बार किया जाता है, सदैव अधिनियम, 2000 के उद्देश्यों द्वारा मार्गदर्शित होना चाहिए और इस स्थिति के प्रति सचेत रहना चाहिए कि अधिनियम, 2000 में अंतर्विष्ट फायदाप्रद और हितकारी उपबंध अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाने से विफल न हो जाएं और वे व्यक्ति जो अधिनियम, 2000 के फायदों को प्राप्त करने के हकदार हैं, ऐसे फायदों को प्राप्त कर सकें । न्यायालयों को अनावश्यक रूप से ऐसी किसी साधारण धारणा से प्रभावित नहीं होना चाहिए कि माता-पिता/संरक्षक विद्यालयों में अपने बालकों की आयु भावी फायदों के लिए एक या दो वर्ष कम लिखवा देते हैं या यह कि चिकित्सीय परीक्षण द्वारा आयु का अवधारण करना बहुत स्पष्ट नहीं है । मामले पर प्रथमदृष्ट्या अधिसंभाव्यता की प्रबलता की कसौटी के आधार पर विचार किया जाना चाहिए ।

39.6 किशोरावस्था का ऐसा दावा जिसमें विश्वसनीयता की कमी है या किशोरावस्था का दावा तुच्छ है या किशोरावस्था का स्पष्ट रूप से अनर्गल या अंतर्निहित रूप से अनधिसंभाव्य दावे को, जब कभी ऐसा दावा किया जाता है, न्यायालय द्वारा आरंभ में ही नामंजूर कर दिया जाना चाहिए ।"

(ग) **अर्नित दास** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय

---

[1] (2000) 5 एस. सी. सी. 488.

ने यह मत व्यक्त किया था कि अभियुक्त की आयु का यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ अवधारण करने के प्रश्न पर विचार करते समय कि क्या वह किशोर है या नहीं, इस अभिवाक् के समर्थन में कि वह किशोर था या नहीं, प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय एक अति तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए और यदि दो मत संभव हों, तो सीमांत मामलों में न्यायालय का झुकाव अभियुक्त को किशोर अभिनिर्धारित करने के पक्ष में होना चाहिए । ऐसा इसलिए है क्योंकि यह अधिनियम एक कल्याणकारी विधान होने के कारण न्यायालयों को इस बात पर लगनशील होकर विचार करना चाहिए कि किशोर को अधिनियम के उपबंधों का पूरा फायदा व्युत्पन्न हो, किंतु साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि न्यायालयों को यह सुनिश्चित किया जाए कि अधिनियम के अधीन संरक्षण और विशेषाधिकारों का दुरुपयोग गंभीर अपराध कारित करने के पश्चात् दंड से बचने के लिए बेईमान व्यक्तियों द्वारा न किया जाए ।

(घ) **जितेन्द्र राम** बनाम **झारखंड राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने **भोला भगत और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई पूर्ववर्ती मताभिव्यक्तियों पर चेतावनी दी थी, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि न्यायालय पर यह आबद्धता अधिरोपित की गई है कि जहां सामाजिक रूप से अभिमुख विधान की फायदाप्रद प्रकृति को ध्यान में रखते हुए ऐसा अभिवाक् किया जाता है, तो उसकी अत्यधिक सावधानीपूर्वक परीक्षा की जानी चाहिए । इस न्यायालय ने **भोला भगत** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपने विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "20. ..... तथापि, हमारी यह राय है कि इसका यह अर्थ नहीं होगा कि ऐसे व्यक्ति से, जो उक्त अधिनियम के फायदे का हकदार नहीं है, केवल इस कारण नरमी बरती जाएगी कि ऐसा कोई अभिवाक् किया गया है । प्रत्येक अभिवाक् पर विचार उसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर किया जाना आवश्यक है । प्रत्येक

---

[1] (2006) 9 एस. सी. सी. 428.

[2] (1997) 8 एस. सी. सी. 720.

मामले पर अभिलेख पर लाई गई सामग्री के आधार पर विचार किया जाना चाहिए ।"

पूर्वोक्त मताभिव्यक्तियां उस संदर्भ में की गई थीं जो **भोला भगत** (उपर्युक्त) वाले मामले में मत व्यक्त किया गया था, जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"18. इस निर्णय से विलग होने से पूर्व, हम इस बात पर पुन: बल देना चाहेंगे कि जब किसी अभियुक्त की ओर से यह अभिवाक् किया जाता है कि वह अधिनियम के अधीन अभिव्यक्ति की परिभाषा के अर्थांतर्गत 'बालक' है, तो न्यायालय के लिए यह आबद्धकर हो जाता है कि यदि उसे अभियुक्त द्वारा यथा दावाकृत आयु के बारे में कोई संदेह उत्पन्न होता है, तो वह अभियुक्त की आयु के प्रश्न का अवधारण करने के लिए स्वयमेव जांच करेगा या जांच करवाएगा और उसके संबंध में पक्षकारों को इस बाबत साक्ष्य पेश करने के लिए कहते हुए, यदि आवश्यक हो, एक रिपोर्ट की ईप्सा करेगा । इस सामाजिक रूप में अभिमुख विधान की फायदाप्रद प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय की यह आबद्धता है कि वह जहां ऐसा अभिवाक् किया जाता है, वहां उस अभिवाक् की सावधानीपूर्वक परीक्षा करे और वह अपने हाथों को बांध कर नहीं रख सकता है तथा उस अभिवाक् के संबंध में एक सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचे बिना अभियुक्त को उपबंधों के फायदे से इनकार नहीं कर सकता है । न्यायालय को अवश्य एक जांच करनी चाहिए और आयु के संबंध में किसी न किसी तरह निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए ।"

(ङ) इसके अतिरिक्त, **जबर सिंह** बनाम **दिनेश और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने एक ऐसी स्थिति पर विचार किया था जिसमें विद्यालय अभिलेखों में दाखिला प्ररूप में या स्थानांतरण प्रमाणपत्रों में जन्म की तारीख की प्रविष्टि से साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन अधिकथित शर्त का समाधान नहीं हुआ था अर्थात् उक्त

[1] (2010) 3 एस. सी. सी. 757.

प्रविष्टि किसी लोक या शासकीय रजिस्टर में नहीं थी और किसी लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में या किसी व्यक्ति द्वारा देश की विधि द्वारा विशेष रूप से व्यादिष्ट कर्तव्य के पालन में नहीं की गई थी और इसलिए उक्त साक्ष्य उक्त मामले में अभियुक्त की आयु का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ सुसंगत नहीं था । पूर्वोक्त मामले में, इस न्यायालय ने पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया था और विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए आदेश की पुष्टि की थी कि उस मामले में अभियुक्त अभिकथित अपराध के कारित होने के समय पर किशोर था ।

(च) **बब्लू पासी** बनाम **झारखंड राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के उपबंधों पर विचार करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "22. यह सुस्थिर है कि किसी व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए एक सामान्य सूत्र अधिकथित करना न तो व्यवहार्य और न ही वांछनीय है । जन्म की तारीख का अवधारण अभिलेख पर की सामग्री के आधार पर और पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर किया जाना चाहिए । किसी व्यक्ति की आयु के बारे में चिकित्सीय साक्ष्य, यद्यपि एक अति उपयोगी मार्गदर्शक कारक होता है, निश्चायक नहीं है और इस पर अन्य तर्कपूर्ण साक्ष्य के साथ विचार किया जाना चाहिए ।
>
> 23. यह सही है कि अर्नित दास **बनाम** बिहार राज्य (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने न्यायिक राय के पुनर्विलोकन पर यह मत व्यक्त किया था कि किसी अभियुक्त की आयु के अवधारण के प्रश्न पर यह पता लगाने के प्रयोजन के लिए कि क्या वह किशोर है या नहीं, अभियुक्त की ओर से इस अभिवाक् के समर्थन में कि वह किशोर था, प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय एक अति तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए और यदि उसी साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हों, तो न्यायालय का झुकाव

---

[1] (2008) 13 एस. सी. सी. 133.

सीमांत मामलों में अभियुक्त को एक किशोर अभिनिर्धारित करने के पक्ष में होना चाहिए । हम इस तथ्य के प्रति भी अंजान नहीं हैं कि यह एक कल्याकारी विधान होने के कारण न्यायालयों को इस बात पर विचार करने के लिए उत्साही होना चाहिए कि किशोर को अधिनियम के उपबंधों का पूरा फायदा व्युत्पन्न हो किंतु साथ ही साथ न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि अधिनियम के अधीन संरक्षण और विशेषाधिकारों का बेईमान व्यक्तियों द्वारा गंभीर अपराधों को कारित करने के लिए दंड से बचने के लिए दुरुपयोग न किया जा सके ।"

(छ) **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **अनूप सिंह**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि अस्थि-विकास जांच तब जन्म की तारीख के अवधारण के लिए एकमात्र मानदंड नहीं है, जब जन्म प्रमाणपत्र और माध्यमिक विद्यालय प्रमाणपत्र उपलब्ध हैं । यह मत व्यक्त किया गया था कि उच्च न्यायालय ने यह उपधारणा करके ठीक नहीं किया था कि उस मामले में अभियोक्त्री की आयु घटना के समय पर 18 वर्ष से अधिक थी । जन्म प्रमाणपत्र और माध्यमिक विद्यालय प्रमाणपत्र में वर्णित जन्म की तारीख में दो दिन का अंतर था किंतु इसे एक तुच्छ फर्क अभिनिर्धारित किया गया था । उस मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि घटना के समय पर अभियोक्त्री की आयु 16 वर्ष से कम थी और उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय को अपास्त कर दिया गया था ।

(ज) **संजीव कुमार गुप्ता** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले का निर्णय हम में से एक (माननीय न्यायमूर्ति डा. डी. वाई. चंद्रचूड़) द्वारा लिखा गया निर्णय है, जिसमें किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 7क के अधीन आयु का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता पर विचार किया जाना था । उक्त मामले में, किशोर न्याय बोर्ड ने किशोरावस्था के दावे को नामंजूर कर दिया था और इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के

---

[1] (2015) 7 एस. सी. सी. 773.

[2] (2019) 12 एस. सी. सी. 370.

निर्णय को अपास्त करते हुए किशोर न्याय बोर्ड के किशोरावस्था के दावे को नामंजूर करने वाले विनिश्चय की पुष्टि की थी । उक्त मामले में, यह मत व्यक्त किया गया था कि केंद्रीय विद्यालय शिक्षा बोर्ड द्वारा बनाए रखे गए अभिलेख पूरी तरह से उस वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय द्वारा प्रेषित की गई विद्यार्थियों की अंतिम सूची के आधार पर थे, जहां उस मामले में के द्वितीय प्रत्यर्थी ने कक्षा पांच से कक्षा दस तक पढ़ाई की थी, न कि अभिलेख में रखे गए किसी अन्य दस्तावेज के आधार पर । दूसरी ओर, जन्म की तारीख का स्पष्ट और अकाट्य साक्ष्य था, जो उस एक अन्य विद्यालय के अभिलेख में अभिलिखित किया गया था, जिसमें उस मामले में के द्वितीय प्रत्यर्थी ने कक्षा चार तक पढ़ाई की थी और इसका समर्थन अभियुक्त द्वारा आधार कार्ड और चालन अनुज्ञप्ति दोनों ही अभिप्राप्त करते समय स्वेच्छा से किए गए प्रकटन से होता था । यह मत व्यक्त किया गया था कि मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में दर्शायी गई जन्म तारीख को प्रामाणिक या विश्वसनीय होने के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता था । उक्त मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उनमें द्वितीय प्रत्यर्थी की जन्म तारीख 17 दिसंबर, 1995 थी और वह किशोरावस्था के दावे का हकदार नहीं था क्योंकि अभिकथित घटना की तारीख 18 अगस्त, 2015 थी । उक्त मामले में **अश्वनी कुमार सक्सेना** (उपर्युक्त) वाले मामले में और **अबुजार हुसैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार किया गया था और यह पाया गया था कि **अबुजार हुसैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में का विनिश्चय **अश्वनी कुमार सक्सेना** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के तीन दिन पश्चात् सुनाया गया था और **अबुजार हुसैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में, जो एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय था, यह मत व्यक्त किया गया था कि विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र सहित दस्तावेजों की विश्वसनीयता और स्वीकार्यता प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी और इस संबंध में कोई कठोर नियम अधिकथित नहीं किया जा सकता है । **अबुजार हुसैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, जो उस समय विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति थे, द्वारा यह मत व्यक्त किया गया था कि जांच का निदेश देना और अभियुक्त के किशोर होने की घोषणा करना एक-जैसी

बात नहीं है । पूर्ववर्ती स्थिति में, न्यायालय केवल एक प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित करता है, जबकि घोषणा साक्ष्य के आधार पर की जाती है । अत: जांच का निदेश देने के प्रक्रम पर दृष्टिकोण अधिक उदार होना चाहिए, ऐसा न हो कि न्याय की हानि हो जाए । दोनों के लिए अपेक्षित सबूत का मानक भिन्न-भिन्न है । पूर्ववर्ती स्थिति में, न्यायालय केवल प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित करता है । अंततोगत्वा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि न्यायालय एक प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कैसे ऐसी सामग्री का मूल्यांकन करता है और न्यायालय जांच का निदेश दे भी सकता है और नहीं भी । पश्चात्वर्ती स्थिति में, न्यायालय साक्ष्य के आधार पर यह घोषणा करता है कि उसने संवीक्षा करनी है और वह ऐसे साक्ष्य को केवल इस आधार पर स्वीकार करता है कि यह स्वीकार करने योग्य है या नहीं । माननीय न्यायमूर्ति ने आगे निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "अत: न्यायालय प्रत्येक मामले में सुसंगत कारकों पर विचार करेगा, बेहतर शपथपत्र फाइल करने पर जोर देगा, यदि ऐसी आवश्यकता उद्भूत होती है, और मामला-दर-मामला आधार पर यह विनिश्चय करने से पूर्व कि धारा 7क के अधीन जांच की जानी चाहिए या नहीं, यहां तक कि माता-पिता की आयु, सहोदर भाई/बहिन की आयु से संबंधित और इसी प्रकार की अन्य जानकारी सहित सुसंगत समझी जाने वाली अन्य अतिरिक्त जानकारी देने का भी निदेश देगा । अंततोगत्वा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि न्यायालय कैसे प्रथमदृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए ऐसी सामग्री का मूल्यांकन करता है कि न्यायालय द्वारा जांच का निदेश दिया जाए या नहीं ।"

(झ) **पराग भाटी (किशोर विधिक संरक्षक-माता-श्रीमती रजिनी भाटी की मार्फत)** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में पूर्वोक्त दोनों निर्णयों पर विचार किया गया था और इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

---

[1] (2016) 12 एस. सी. सी. 744.

"34. निस्संदेह यह सही है कि यदि किशोर अभियुक्त के पक्ष में एक ऐसा स्पष्ट और असंदिग्ध मामला है कि वह घटना की तारीख को 18 वर्ष से कम आयु का एक अप्राप्तवय था और दस्तावेजी साक्ष्य से कम से कम प्रथमदृष्ट्या यह बात साबित होती है, तो वह किशोर न्याय अधिनियम के अधीन विशेष संरक्षण का हकदार होगा । किंतु जब कोई अभियुक्त एक गंभीर और जघन्य अपराध कारित करता है और उसके पश्चात् एक अप्राप्तवय होने का बहाना बनाकर कानूनी आश्रय लेने का प्रयत्न करता है, तो यह अभिलिखित करते समय कि क्या अभियुक्त एक किशोर है या नहीं, एक नैमित्तिक या असावधानीपूर्वक दृष्टिकोण को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है क्योंकि न्यायालयों पर अपने कर्तव्यों को न्याय प्रशासन की संस्था में सामान्य व्यक्ति के विश्वास को संरक्षित रखने के उद्देश्य के साथ अपने कर्तव्यों को पूरा करना व्यादिष्ट किया गया है ।

35. इस प्रकार, किशोर न्याय अधिनियम के हितकारी विधान के सिद्धांत का फायदा केवल ऐसे मामलों को लागू होगा, जिनमें अभियुक्त को उसकी अप्राप्तवयता के संबंध में कम से कम प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य के आधार पर किशोर होना अभिनिर्धारित किया जाता है क्योंकि ऐसे अभिकथित अभियुक्त के संबंध में दो मत होने की संभावनाओं का फायदा, जो उस घोर और गंभीर अपराध में अंतर्ग्रस्त है जो उसने कारित किया है और उसे एक ऐसी भली-भांति योजनाबद्ध रीति में किया है जिससे उसकी निर्दोषिता की बजाय उसके मस्तिष्क की परिपक्वता प्रदर्शित होती है और यह उपदर्शित हो रहा हो कि किशोरावस्था का उसका अभिवाक् पैंतरेबाजी या छल-कपट से विधि के शिकंजे से बच निकलने के लिए एक ढाल की प्रकृति का अधिक है, तो इसे उसके बचाव में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । उपरोक्त विनिश्चय से यह स्पष्ट है कि किशोर न्याय अधिनियम, 2000 का प्रयोजन घोर और जघन्य अपराधों के अभियुक्तों को आश्रय देना नहीं है ।

36. विधि की यह स्थिर स्थिति है कि यदि मैट्रिकुलेशन या

समतुल्य प्रमाणपत्र उपलब्ध हैं और जन्म की तारीख की शुद्धता को साबित करने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं है, तो मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उल्लिखित जन्म की तारीख को अभियुक्त के जन्म की तारीख के एक निश्चायक सबूत के रूप में समझा जाना चाहिए । तथापि, यदि कोई संदेह है या अभियुक्त द्वारा कोई ऐसा विरोधाभासी आधार लिया जा रहा है जिससे जन्म की तारीख की शुद्धता पर संदेह उत्पन्न होता है तब, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **अबुजार हुसैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित किया गया है, अभियुक्त की आयु के अवधारण के लिए जांच करना अनुज्ञेय है, जो प्रस्तुत मामले में की गई है ।"

(ञ) **राम विजय सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में माननीय न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता द्वारा सुनाए गए निर्णय में यह मत व्यक्त किया गया था कि अस्थि-विकास जांच आयु अवधारण का एकमात्र मानदंड नहीं है और व्यक्ति की आयु के संबंध में अंधाधुंध और तकनीकी दृष्टिकोण को केवल विकिरण-चिकित्सा विज्ञान संबंधी परीक्षण द्वारा दी गई चिकित्सीय राय के आधार पर नहीं अपनाया जा सकता है । यद्यपि विकिरण-चिकित्सा विज्ञान संबंधी परीक्षण किसी व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए एक उपयोगी मार्गदर्शक कारक है, तो भी यह साक्ष्य एक निश्चायक और अविवाद्य प्रकृति का नहीं है और यह गलती होने की गुंजाइश के अध्यधीन है । किसी व्यक्ति की आयु के बारे में चिकित्सीय साक्ष्य यद्यपि एक अति उपयोगी मार्गदर्शक कारक है, तो भी यह निश्चायक नहीं होता है और इस पर अन्य परिस्थितियों के साथ विचार किया जाना चाहिए । उक्त निर्णय के सुसंगत पैराओं को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"14. हमारा यह निष्कर्ष है कि व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए नियम 12 में विहित की गई प्रक्रिया अधिनियम की धारा 94 के उपबंधों की अपेक्षा तात्विक रूप से भिन्न नहीं है । गौण अंतर हैं क्योंकि नियम 12(3)(क)(i) और (ii) को भाषा में

---

[1] 2021 क्रिमिनल ला जर्नल 2805.

थोड़ा परिवर्तन करके एक-साथ मिला दिया गया है । अधिनियम की धारा 94 में बालक या किशोर को दिए जाने वाले आयु के मार्जिन के फायदे के संबंध में उपबंध अंतर्विष्ट नहीं हैं जैसा कि नियमों के नियम 12(3)(ख) में उपबंधित किया गया था । अस्थि-विकास जांच के महत्व में अधिनियम की धारा 94 के अधिनियमन से परिवर्तन नहीं किया गया है । अस्थि-विकास जांच की विश्वसनीयता नियमों के नियम 12 के अधीन की तरह असुरक्षित बनी रही है ।

15. अधिनियम की स्कीम के अनुसार, जब समिति या बोर्ड को व्यक्ति की प्रतीति के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उक्त व्यक्ति एक बालक है, तो बोर्ड या समिति आयु की अभिपुष्टि की और आगे प्रतीक्षा किए बिना बालक की यथासंभव सन्निकट आयु का उल्लेख करते हुए संप्रेषण को अभिलिखित करेगा । अत: आयु का अवधारण करने के लिए प्रथम प्रयत्न व्यक्ति की शारीरिक प्रतीति का निर्धारण करके किया जाता है जब उसे बोर्ड या समिति के समक्ष लाया जाता है । केवल संदेह की स्थिति में, साक्ष्य की ईप्सा करके आयु अवधारण की प्रक्रिया आवश्यक हो जाती है । उस प्रक्रम पर, जब व्यक्ति की आयु लगभग 18 वर्ष हो, तब अस्थि-विकास जांच को विधि का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की सन्निकट आयु का अवधारण करने के लिए सुसंगत होना कहा जा सकता है । तथापि, जब व्यक्ति की आयु लगभग 40-55 वर्ष हो, तब अस्थिओं की बनावट आयु का अवधारण करने में मददगार नहीं हो सकती है । इस न्यायालय ने अर्जुन पंडितराव खोटकर **बनाम** कैलाश कुशनराव घोरंत्याल और अन्य [(2020) 7 एस. सी. सी. 1] वाले मामले में साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65ख के अधीन अपेक्षित प्रमाणपत्र के संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया था कि लैटिन सूत्र विधि असंभव करने के लिए विवश नहीं करती (लेक्स नॉन कोजिट एड इम्पोसिबिलिया) के अनुसार विधि असंभव की मांग नहीं करती है । इस प्रकार, जब अस्थि-विकास जांच से भरोसेमंद और विश्वसनीय परिणाम नहीं निकल सकता हो, तब घटना की तारीख को संबंधित व्यक्ति की आयु का अवधारण करने

के लिए ऐसे परीक्षण को आधार नहीं बनाया जा सकता है । अत: अपीलार्थी की आयु का पता लगाने के लिए किसी विश्वसनीय और भरोसेमंद चिकित्सीय साक्ष्य के अभाव में, वर्ष 2020 में जब अपीलार्थी की आयु 55 वर्ष थी, किए गए अस्थि-विकास जांच को घटना की तारीख को किशोर होने के रूप में उसकी घोषणा करने के लिए निश्चायक नहीं हो सकता है ।"

29. पूर्वोक्त अनेक निर्णयों पर संचयी विचार करने पर निम्नलिखित प्रकट होता है :–

(i) किशोरावस्था का दावा किसी दांडिक कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी, किया जा सकता है । किशोरावस्था का दावा करने में हुआ विलंब ऐसे दावे को नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकता है । इसे पहली बार इस न्यायालय के समक्ष भी किया जा सकता है ।

(ii) किशोरावस्था का दावा करने के लिए आवेदन या तो न्यायालय या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष किया जा सकता है ।

(iiक) जब किशोरावस्था का विवाद्यक किसी न्यायालय के समक्ष उद्भूत होता है, तो यह किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 9 की उपधारा (2) और (3) के अधीन होगा किंतु जब किसी व्यक्ति को किसी समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाया जाता है, तब किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 लागू होती है ।

(iiख) यदि किशोरावस्था का दावा करते हुए न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया जाता है, तो किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) के उपबंध को या इसके साथ पठित धारा 9 की उपधारा (2) को लागू करना होगा जिससे व्यक्ति की यथासंभव सन्निकट आयु का उल्लेख करते हुए निष्कर्ष अभिलिखित करने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य की ईप्सा की जा सके ।

(iiग) जब किशोरावस्था का दावा करते हुए आवेदन उस समय

किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अधीन किया जाता है, जब अभिकथित अपराध कारित करने के संबंध में मामला किसी न्यायालय के समक्ष लंबित है, तब किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया लागू होगी । उक्त उपबंध के अधीन यदि किशोर न्याय बोर्ड के पास इस संबंध में संदेह करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो बोर्ड द्वारा साक्ष्य की ईप्सा करके उसके समक्ष लाए गए ऐसे व्यक्ति की आयु किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के प्रयोजन के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । अवधारण की प्रक्रिया करेगा और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा अभिलिखित आयु होगी । इसलिए जब विचारण संबंधित दांडिक न्यायालय के समक्ष है तब किशोरावस्था के दावे की ईप्सा करते हुए आवेदन फाइल किया जाता है तो किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष ऐसी कार्यवाही में अपेक्षित सबूत की मात्रा उसकी बजाय उच्चतर होती है जब जांच उस न्यायालय द्वारा की जाती है जिसके समक्ष अपराध कारित करने के संबंध में मामला लंबित है (किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 9 देखें) ।

(iii) जब किशोरावस्था के लिए दावा किया जाता है, तब भार दावा करने वाले व्यक्ति पर है जिससे न्यायालय का आरंभिक भार के निर्वहन के लिए समाधान हो सके । तथापि, किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के अधीन बनाए गए किशोर न्याय नियम, 2007 के नियम 12(3)(क)(i), (ii) और (iii) या किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) में वर्णित दस्तावेज न्यायालय के समाधानप्रद प्रथमदृष्ट्या पर्याप्त होंगे । पूर्वोक्त दस्तावेजों के आधार पर किशोरावस्था की एक उपधारणा की जा सकेगी ।

(iv) तथापि, उक्त उपधारणा किशोरावस्था की आयु का निश्चायक सबूत नहीं है और विरोधी पक्ष द्वारा इसके विपरीत साक्ष्य प्रस्तुत करके इसका खंडन किया जा सकेगा ।

(v) किसी न्यायालय द्वारा की जाने वाली जांच की प्रक्रिया उस समय जब मामला संबंधित दांडिक न्यायालय के समक्ष लंबित है, तब किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष किशोर के रूप में व्यक्ति की आयु की घोषणा करने के समान नहीं है । जांच के मामले में, न्यायालय एक प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित करता है किंतु जब आयु का अवधारण किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) के अनुसार किया जाता है, तब यह घोषणा साक्ष्य के आधार पर की जाती है । यह भी कि, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा अभिलिखित की गई आयु को उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । इस प्रकार, जांच में सबूत का मानक उस मानक से भिन्न है जो उस कार्यवाही में अपेक्षित होता है जहां किसी व्यक्ति की आयु का अवधारण और उसकी घोषणा संवीक्षा किए गए और स्वीकृत साक्ष्य, केवल यदि वह साक्ष्य स्वीकार करने योग्य हो, के आधार पर की जानी होती है ।

(vi) किसी व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए एक निरपेक्ष सूत्र को अभिकथित करना न तो व्यवहार्य और न ही वांछनीय है । यह अभिलेख पर सामग्री के आधार पर और प्रत्येक मामले में पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर किया जाना चाहिए ।

(vii) इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि तब एक अति तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए जब अभियुक्त की ओर से इस अभिवाक् के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है कि वह किशोर था ।

(viii) यदि एक-जैसे साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हों, तो न्यायालय का झुकाव सीमांत मामलों में अभियुक्त को एक किशोर होना अभिनिर्धारित करने के पक्ष में होना चाहिए । यह इस बात को सुनिश्चित करने के लिए है कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के फायदे को विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के लिए लागू किया गया है । साथ ही साथ, न्यायालय को यह सुनिश्चित

करना चाहिए कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 का व्यक्तियों द्वारा गंभीर अपराध कारित करने के पश्चात् दंड से बचने के लिए दुरुपयोग न हो ।

(ix) जब आयु का अवधारण विद्यालय अभिलेख जैसे साक्ष्य के आधार पर किया जाता है, तो यह आवश्यक है कि इस पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अनुसार विचार किया जाना होगा क्योंकि शासकीय कर्तव्य का निर्वहन करते हुए बनाया रखा गया कोई लोक या शासकीय दस्तावेज की प्राइवेट दस्तावेजों की बजाय अधिक विश्वसनीयता होगी ।

(x) कोई दस्तावेज जो लोक दस्तावेजों के समरूप है, जैसे कि मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र, उसे न्यायालय या किशोर न्याय बोर्ड द्वारा स्वीकार किया जा सकता है बशर्ते ऐसा लोक दस्तावेज भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के अनुसार अर्थात् धारा 35 और अन्य उपबंधों के अनुसार विश्वसनीय और प्रामाणिक हो ।

(xi) आयु का अवधारण करने के लिए अस्थि-विकास जांच एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता है और किसी व्यक्ति की आयु के संबंध में किसी यांत्रिक मत को मात्र विकिरण-चिकित्सा विज्ञान परीक्षण द्वारा दी गई चिकित्सीय राय के आधार पर नहीं अपनाया जा सकता है । ऐसा साक्ष्य निश्चायक साक्ष्य नहीं है किंतु किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94(2) में वर्णित दस्तावेजों के अभाव में विचार किया जाने वाला केवल एक अति उपयोगी मार्ग-दर्शक कारक है ।

30. विधि की पूर्वोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, इसे प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू किया जा सकता है । यह पाया गया है कि तारीख 5 मई, 2020 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में प्रत्यर्थी सं. 2 का नाम निशु के रूप में लिखा गया है और यह उल्लेख किया गया है कि निशु पुत्र भूषण और अन्य अभियुक्त फरसा (कुल्हाड़ी जैसा आयुध), लाठी और बालकाटियां (गंडासियां) लिए हुए थे और इस अपील में शिकायतकर्ता/अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों पर आक्रमण किया था (प्रदर्श

पी-1) ।

31. प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत की ओर से किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष फाइल किया गया आवेदन (2020 का प्रकीर्ण मामला सं. 16) यह घोषणा करने के लिए था कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक किशोर अपचारी था और अभिकथित अपराधों के कारित होने की तारीख अर्थात् 5 मई, 2020 को उसकी आयु लगभग 15 वर्ष 8 माह थी । ऐसा कोई आवेदन सक्षम सेशन न्यायालय के समक्ष फाइल नहीं किया गया था ।

32. जो भी स्थिति हो, पूर्वोक्त आवेदन के समर्थन में उत्तर प्रदेश उच्च विद्यालय और माध्यमिक परीक्षा बोर्ड द्वारा जारी उच्च विद्यालय का प्रमाणपत्र-सह-अंक सूची यह कथन करते हुए प्रस्तुत किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत की जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 है और उसने फरवरी, 2019 में आयोजित उच्च विद्यालय परीक्षा उत्तीर्ण की थी । उक्त प्रमाणपत्र तारीख 27 अप्रैल, 2019 का है ।

33. प्रत्यर्थी सं. 2 की माता द्वारा यह कथन किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 2 के जन्म के पश्चात् उसका जन्म प्रमाणपत्र नहीं लिया गया था ; जब प्रत्यर्थी सं. 2 के पिता ने सर्वोदय पब्लिक स्कूल, खिंडोरा, जिला बागपत में उसका कक्षा 1 में दाखिला कराया था तब विद्यालय में दाखिले के समय पर जन्म की बाबत कोई दस्तावेज नहीं दिया गया था । जन्म की तारीख मौखिक रूप से बताई गई थी । प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत ने सर्वोदय पब्लिक स्कूल में कक्षा 8 तक पढ़ाई की थी और उसके पश्चात् उसे कक्षा 9 के लिए एक अन्य विद्यालय अर्थात् सरदार वल्लभभाई पटेल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, शजारपुर, कैडना, जिला बागपत में दाखिल कराया गया था । प्रत्यर्थी सं. 2 की माता ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह दोहराया था कि प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत का सर्वोदय पब्लिक स्कूल में कक्षा 1 में दाखिले के समय पर उसकी जन्म तारीख मौखिक रूप से बताई गई थी और उसके समर्थन में विद्यालय में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया था ।

34. प्रति. सा. 2 मनोज कुमार, प्रधानाचार्य, सरदार वल्लभभाई पटेल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, शजारपुर, कैडना, जिला बागपत ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया था कि प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत को

तारीख 4 जुलाई, 2017 को कक्षा 9 में दाखिल किया गया था और एक स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया था जिस पर प्रत्यर्थी सं. 2 की जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 अभिलिखित थी और उसे विद्यालय के अभिलेख में रखा गया था । सभी दाखिला प्ररूपों पर विद्यार्थियों और संरक्षकों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिएं थे किंतु पूर्ववर्ती विद्यालय से लिया गया स्थानांतरण प्रमाणपत्र सत्यापित नहीं था ।

35. उपाबंध पी-11 सर्वोदय पब्लिक स्कूल, खिंडोरा, बागपत के दाखिला आवेदन प्ररूप की प्रति है, जो हिंदी में है, जिस पर प्रत्यर्थी सं. 2 ने हस्ताक्षर किए हैं । उपाबंध पी-12 कक्षा 8 में दाखिले की ईप्सा करते हुए तारीख 3 अप्रैल, 2014 के आवेदन प्ररूप की प्रति है । प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि उपाबंध पी-11 और उपाबंध पी-12 पर प्रत्यर्थी सं. 2 के हस्ताक्षरों की तुलना करने पर यह पाया गया है कि उपाबंध पी-11 पर हस्ताक्षर वर्ष 2009 में किए गए थे, जबकि उपाबंध पी-12 पर हस्ताक्षर 2014 में किए गए थे और वे एक-जैसे हैं । इसके अतिरिक्त, कक्षा 1 में दाखिला लेने वाले किसी बालक के लिए दाखिला प्ररूप पर अपने नाम के हस्ताक्षर करना संभव नहीं है ।

36. प्रति. सा. 3 सुरेन्द्र कुमार सैनी, प्रधानाचार्य, सर्वोदय पब्लिक स्कूल, खिंडोरा, बागपत ने यह कथन किया था कि प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत की आयु कक्षा 1 में दाखिला लेने के समय पर चार वर्ष से थोड़ी अधिक थी ; यह कि दाखिला प्ररूप पर निशांत का कोई फोटो नहीं चिपकाया गया था और न ही निशांत के पूर्ववर्ती स्कूल का कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया गया था ; यह कि निशांत ने सर्वोदय पब्लिक स्कूल में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक पढ़ाई की थी और कक्षा 5 उत्तीर्ण करने के पश्चात् कक्षा 6 के लिए दाखिला प्ररूप भरा जाना चाहिए था किंतु यह फाइल में उपलब्ध नहीं है । उसने आगे यह कथन किया कि तारीख 3 अप्रैल, 2014 का दाखिला प्ररूप, जिस पर निशांत और उसके पिता द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किए गए हैं, अभिलेख पर उपलब्ध है और वह कक्षा 8 से संबंधित है । उसने यह भी स्वीकार किया कि कक्षा 1 और कक्षा 8 के दाखिला प्ररूपों पर निशांत के हस्ताक्षर एक-जैसे हैं । किंतु उक्त दाखिला

प्ररूप गढ़े गए नहीं हैं ।

37. किशोर न्याय बोर्ड, बागपत ने तारीख 14 सितंबर, 2020 के अपने आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत के चिकित्सीय परीक्षण की ईप्सा करते हुए प्रस्तुत किए गए आवेदन को खारिज कर दिया था और यह दर्शित करने के लिए कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि उस आदेश को अपास्त कर दिया गया था । किशोर न्याय बोर्ड के अनुसार, संबंधित बोर्ड द्वारा जारी किए गए मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में 25 सितंबर, 2004 जन्म तारीख के रूप में उपदर्शित की गई है और केवल ऐसे किसी दस्तावेज के अभाव में ही आयु का अवधारण अस्थि-विकास जांच या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधारण परीक्षण द्वारा किया जाना चाहिए । प्रस्तुत मामले में, चूंकि मैट्रिकुलेशन बोर्ड का प्रमाणपत्र उपलब्ध था, इसलिए निशांत का चिकित्सीय परीक्षण कराने के लिए आदेश देना अनावश्यक था ।

38. इसके पश्चात्, किशोर न्याय बोर्ड ने तारीख 11 नवंबर, 2020 के अपने आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत की ओर से फाइल किए गए प्रत्यर्थी सं. 1 के आवेदन (2020 का प्रकीर्ण मामला सं. 16) को मंजूर किया । किशोर न्याय बोर्ड ने यह मत व्यक्त किया कि प्रशासनिक अधिकारी, आंचलिक कार्यालय, मध्यवर्ती शिक्षा परिषद्, मेरठ, उत्तर प्रदेश के कार्यालय द्वारा जारी तारीख 22 जुलाई, 2020 के पत्र से यह प्रकट होता है कि उच्च विद्यालय की अंक-सूची में अभियुक्त निशांत की 25 सितंबर, 2004 के रूप में जन्म तारीख ठीक ही अभिलिखित की गई है । अत: प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत की आयु घटना की तारीख को 15 वर्ष और 8 माह थी ।

39. किशोर न्याय बोर्ड ने तारीख 11 नवंबर, 2020 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत को पुलिस थाना सिंघावली अहीर, जिला बागपत के 2020 के अपराध मामला सं. 116 में भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 323, 307, 302 और 34 के अधीन अपराधों के लिए एक किशोर अपचारी घोषित किया ।

40. पूर्वोक्त आदेश को जिला और सेशन न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए संधार्य रखा गया कि

किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 का प्रस्तुत मामले में पालन किया गया था क्योंकि संबंधित परीक्षा बोर्ड के मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र में प्रत्यर्थी सं. 2 निशांत की जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 उपदर्शित की गई है । अत: किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (2) लागू होती है क्योंकि उक्त दस्तावेज पर संदेह करने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था । इसको नकारने के लिए कोई साक्ष्य न होने के कारण दांडिक पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया गया था । यह खारिजी किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (3), जो कि एक धारणा उपबंध है, के आधार पर की गई है ।

41. यद्यपि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री द्विवेदी ने इस बात पर बल दिया कि कक्षा 1 और कक्षा 8 के दाखिला प्ररूपों पर प्रत्यर्थी सं. 2-निशांत के हस्ताक्षर एक-जैसे हैं और कक्षा 1 के दाखिला प्ररूप पर ऐसा नहीं हो सकता था क्योंकि निशांत की आयु उस समय केवल साढ़े चार वर्ष थी जब उसे कक्षा 1 में दाखिल किया गया था । किंतु वास्तविकता यह है कि वर्ष 2019 में जब निशांत ने कक्षा 10 पूर्ण की थी, तब मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उसकी जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 दर्शाई गई थी । अत: प्रत्यर्थी सं. 2 की आयु घटना की तारीख को केवल लगभग 15 वर्ष थी और किसी भी स्थिति में उसकी आयु 16 वर्ष से कम थी ।

42. इस अपील में अपीलार्थी द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई खंडनीय साक्ष्य नहीं लाया गया है कि यदि कक्षा 1 और कक्षा 8 में दाखिला लेने के लिए दस्तावेजों को विश्वसनीय न भी माना जाए या त्यक्त कर दिया जाए, तो भी वास्तविकता यह है कि संबंधित बोर्ड द्वारा जारी निशांत के मैट्रिकुलेशन से संबंधित अंक-सूची से यह उपधारणा उद्भूत होती है कि निशांत की आयु घटना की तारीख अर्थात् 5 मई, 2020 को 16 वर्ष से कम थी । इसके अतिरिक्त, प्रशासनिक अधिकारी, आंचलिक कार्यालय, मध्यवर्ती शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के तारीख 22 जुलाई, 2020 के पत्र से उसकी आयु 25 सितंबर, 2004 प्रकट होती है ।

43. दो बातें हैं, जिनसे **संजीव कुमार गुप्ता** (उपर्युक्त) वाले मामले

का निर्णय प्रभेदित होता है । प्रथमत:, **संजीव कुमार गुप्ता** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यद्यपि माध्यमिक विद्यालय द्वारा प्रेषित किए गए दस्तावेज की अंतिम सूची के आधार पर बनाए रखे गए केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अभिलेख की संपुष्टि करने के लिए कोई अंतर्निहित दस्तावेज नहीं था, तो भी जन्म की तारीख के संबंध में ऐसा स्पष्ट और अकाट्य साक्ष्य था जो उस विद्यालय के अभिलेख में अभिलिखित किया गया था, जिसमें द्वितीय प्रत्यर्थी ने कक्षा 4 तक पढ़ाई की थी और अभियुक्त द्वारा इसका समर्थन आधार कार्ड और चालन अनुज्ञप्ति दोनों को अभिप्राप्त करते समय स्वेच्छा से किए गए प्रकटन द्वारा किया गया था ।

44. प्रस्तुत मामले में, प्रदर्श पी-11 और 12 का यह साबित करने के लिए अवलंब लिया गया है कि उक्त दस्तावेजों में वर्णित प्रत्यर्थी सं. 2 की जन्म तारीख मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उपदर्शित जन्म तारीख के अनुरूप है । यद्यपि, प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रदर्श पी-11 और 12 का अवलंब नहीं लिया जा सकता है, फिर भी वास्तविकता यह है कि अभियुक्त निशांत की उच्च विद्यालय की अंक-सूची के साथ गजट वर्ष 2009, अनुक्रमांक सं. 0485064 की फोटो प्रति में भी अभियुक्त निशांत की जन्म तारीख 25 सितंबर, 2004 के रूप में प्रमाणित की गई है, जिसके संबंध में प्रशासनिक अधिकारी, आंचलिक कार्यालय, मध्यवर्ती शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश (मेरठ) के कार्यालय से प्राप्त तारीख 22 जुलाई, 2020 का एक सत्यापन पत्र है जिसका संख्यांक आर.ओ.आई.ई.सी./रिकार्ड्स/4016 है । इसके अतिरिक्त, उक्त मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र संबंधित बोर्ड द्वारा जारी किया गया है । इसके अलावा, विद्यालय के दाखिला अभिलेख तथा मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में अभिलिखित जन्म तारीख एक समान अर्थात् 25 सितंबर, 2004 है । घटना तारीख 5 मई, 2020 को घटी थी । अत: घटना की तारीख को प्रत्यर्थी सं. 2 की आयु केवल 15 वर्ष 7 माह थी, जो किसी भी स्थिति में 16 वर्ष की आयु से कम है ।

45. द्वितीयत:, **संजीव कुमार गुप्ता** (उपर्युक्त) वाले मामले में उच्च न्यायालय ने मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र के आधार पर सेशन

न्यायाधीश के निष्कर्षों को यह अभिनिर्धारित करते हुए उलट दिया था कि उक्त प्रमाणपत्र की अन्य दस्तावेज पर वरीयता होगी । इस निष्कर्ष को इस न्यायालय द्वारा उलट दिया था क्योंकि आधार कार्ड, मतदाता पहचान पत्र और आठवीं कक्षा की अंक-सूची में द्वितीय प्रत्यर्थी की जन्म तारीख 27 दिसंबर, 1995 उपदर्शित थी, जबकि मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में जन्म तारीख 27 दिसंबर, 1998 उपदर्शित थी । और, चिकित्सीय रिपोर्ट के अनुसार, यह राय व्यक्त की गई थी कि द्वितीय प्रत्यर्थी की आयु तारीख 9 नवंबर, 2016 को 19 वर्ष थी जब उक्त मामले में उसके द्वारा कथित रूप से अभिकथित अपराध कारित किए गए थे ।

46. किंतु प्रस्तुत मामले में, स्वीकृततः, द्वितीय प्रत्यर्थी की मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में उपदर्शित जन्म तारीख के प्रतिकूल उपदर्शित करते हुए कोई अन्य दस्तावेज नहीं है । इस प्रकार, इस मामले में जन्म तारीख के बारे में ऐसा कोई फर्क उद्भूत नहीं होता है । इस अपील में अपीलार्थी द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के विपरीत कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में, हम इस मामले में उच्च न्यायालय के उस आदेश से भिन्न मत व्यक्त करने के लिए तैयार नहीं हैं, जिसमें जिला और सेशन न्यायाधीश तथा किशोर न्याय बोर्ड के निर्णय को संधार्य रखा गया है ।

47. किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 में किशोर न्याय बोर्ड या समिति के समक्ष लाए गए बालक की आयु की किशोरावस्था के संबंध में उपधारणा करना उपबंधित है । किंतु यदि बोर्ड या समिति के पास उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति के बारे में यह संदेह करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि वह बालक है या नहीं, तो वह साक्ष्य की ईप्सा करके आयु का अवधारण करने की प्रक्रिया कर सकता है । अतः आरंभिक प्रक्रम पर उक्त प्राधिकारियों द्वारा यह उपधारणा की जानी चाहिए कि समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाया गया बालक किशोर है । उक्त उपधारणा बालक का अवलोकन करके की जानी चाहिए । तथापि, उक्त उपधारणा तब नहीं की जा सकती है जब समिति या बोर्ड के पास उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति के संबंध में यह संदेह

करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि वह बालक है या नहीं । ऐसी स्थिति में, वह साक्ष्य द्वारा आयु अवधारण की प्रक्रिया कर सकता है, जो निम्नलिखित रूप में की जा सकती है :–

(i) विद्यालय से प्राप्त जन्म तारीख प्रमाणपत्र या संबंधित बोर्ड से मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, या उसके अभाव में ;

(ii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र और उपरोक्त के अभाव में ;

(iii) आयु का अवधारण समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई अस्थि-विकास जांच या कोई अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधारण जांच के आधार पर किया जाएगा ।

48. समिति या बोर्ड द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की अभिलिखित आयु किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के प्रयोजनार्थ उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी । किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उपधारा (3) में धारणा उपबंध भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें समिति या किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष लाए गए बालक की आयु के संबंध में संविवाद या संदेह का निपटान स्वयमेव किशोर न्याय बोर्ड या समिति के स्तर पर किया जाना ईप्सित है ।

49. इन परिस्थितियों में, हम प्रस्तुत अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और इसे खारिज किया जाता है ।

50. लंबित अंतर्वर्ती आवेदनों का, यदि कोई हो, निपटारा हो जाएगा ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2022] 1 उम. नि. प. 209

उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

जय दत्त और एक अन्य

[2022 की दांडिक अपील सं. 37]

19 जनवरी, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302/34 और धारा 326 – हत्या या खतरनाक आयुधों द्वारा घोर उपहति कारित करना – अभियुक्तों द्वारा विभिन्न आयुधों से मृतक के सिर सहित शरीर के अन्य भागों पर गंभीर क्षतियां कारित किया जाना – घटना के छह दिन पश्चात् क्षतियों के कारण मृतक की मृत्यु हो जाना – अभियुक्तों को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मृतक की मृत्यु घटना के छह दिन पश्चात् होने के आधार पर धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को धारा 326 में संपरिवर्तित किया जाना – संधार्यता – जहां डाक्टर द्वारा मृतक की मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में अन्य क्षतियों के साथ-साथ मृतक के मार्मिक अंग सिर पर गंभीर क्षति पाए जाने और उसके कारण मृतक की मृत्यु होने का उल्लेख किया गया हो, वहां केवल इस कारण कि मृतक की मृत्यु घटना के छह दिन पश्चात् हुई थी, अभियुक्तों की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को धारा 326 के अधीन दोषसिद्धि में संपरिवर्तित करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि जब मृतक अपने खेत में काम कर रहा था, तो सभी अभियुक्त वहां पहुंचे और उससे गाली-गलौच करने लगे और उनके द्वारा मृतक की पिटाई की गई । सभी अभियुक्तों के पास विभिन्न आयुध थे । मृतक की पिटाई के परिणामस्वरूप उसे कई सारी क्षतियां पहुंचीं और बाद में उसकी गंभीर हालत पर विचार करते हुए उसे अस्पताल ले जाया गया, जहां लगभग छह दिनों के

पश्चात् क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । अभियुक्त सं. 1 जय दत्त, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोपित और विचारित किया गया था, को छोड़कर सभी अभियुक्त व्यक्तियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराधों के लिए आरोपित और उनका विचारण किया गया । अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने कई सारे साक्षियों की परीक्षा की, जिनमें अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे । अभि. सा. 8-डा. पी. आर. मिश्रा, जिसने मृतक के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी, की परीक्षा करके अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट को लाया गया । विचारण न्यायालय ने जय दत्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अन्य अभियुक्तों लाल बहादुर, शेर सिंह और शास्त्री को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और उन्हें आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । सभी अभियुक्तों ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की । अपील के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त लाल बहादुर और शेर सिंह का देहांत हो गया और उनके संबंध में अपील का उपशमन हो गया । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा शेष अभियुक्तों जय दत्त और शास्त्री के संबंध में उक्त अपील को भागत: मंजूर किया और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन दोषसिद्धि में मुख्य रूप से इस आधार पर संपरिवर्तित कर दिया कि मृतक की मृत्यु घटना से छह दिनों के पश्चात् हुई थी और सिर का अस्थिभंग नहीं पाया गया था । उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध के लिए केवल दो वर्ष का दंडादेश अधिरोपित किया और इसका आधार यह था कि घटना लगभग 36 वर्ष पहले घटी थी और इसलिए दो वर्ष का दंडादेश अधिरोपित करना न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए पर्याप्त

होगा । राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – डा. पी. आर. मिश्रा-अभि. सा. 8, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने मस्तिष्क का आवरण खोलने पर मस्तिष्क को संकुलित, दोनों कनपटियों के पिंडक पर सबड्यूरल हेमेटोमा (मस्तिष्क की सतह के नीचे रक्त का थक्का) पाया था । डाक्टर के अनुसार मृतक की मृत्यु सिर पर की क्षति सं. 1 के कारण हुई थी । पूर्वोक्त क्षतियां, विशिष्ट रूप से सिर पर क्षति सं. 1, घातक थी और उक्त क्षतियों के कारण मृतक की मृत्यु हुई थी । मात्र यह कारण कि मृतक की मृत्यु छह दिनों के पश्चात् हुई थी, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि को अपास्त करने और इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित करने का आधार नहीं हो सकता था । मृतक को पहले प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया था, तथापि, उसकी हालत गंभीर पाई गई थी और इसलिए उसे तारीख 20 दिसंबर, 1983 को लखनऊ स्थित अस्पताल ले जाया गया था और उसके पश्चात् उपचाराधीन रहते हुए तारीख 26 दिसंबर, 1983 को उसकी मृत्यु हो गई थी और मृत्यु का मुख्य कारण सिर पर क्षति सं. 1 पाया गया था । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यद्यपि उच्च न्यायालय ने नौ क्षतियों का उल्लेख किया था, जो डाक्टर बी. एल. कटियार, चिकित्सा अधिकारी, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र द्वारा पाई गई थीं, तो भी उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में उल्लिखित राम अवतार के शव पर पाई गई मृत्यु-पूर्व की क्षतियों की कतई अवेक्षा नहीं की थी और/या विचार नहीं किया था । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है और चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार भी, मृत्यु का कारण सिर पर की क्षति सं. 1 थी । आयुध का प्रयोग शरीर के मार्मिक अंग-सिर पर किया गया था और अंततोगत्वा यह घातक साबित हुआ और सिर पर क्षति सं. 1 के कारण मृतक की मृत्यु हुई थी । अत: तनिक संदेह के बिना यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन नहीं आएगा । उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302

के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित करने के लिए दिया गया एक अन्य कारण यह है कि सिर पर कोई अस्थिभंग नहीं पाया गया था । तथापि, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि मृतक की मृत्यु आंतरिक क्षतियों के कारण हुई थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार सिर पर क्षति पाई गई है । डा. पी. आर. मिश्रा-अभि. सा. 8, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, के अनुसार मस्तिष्क के आवरण को खोलने पर उसे मस्तिष्क को संकुलित, दोनों कनपटियों के पिंडक पर सबड्यूरल हेमेटोमा पाया था । इसलिए मात्र इस कारण कि कोई अस्थि-भंग होने का उल्लेख नहीं किया गया था और/या पाया गया था, मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बाहर नहीं लाया जा सकता है जबकि मृतक की मृत्यु सिर पर क्षति सं. 1 के कारण हुई थी । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, सिर पर क्षति कारित करना शरीर के मार्मिक अंग पर क्षति कारित करना कहा जा सकता है और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन एक स्पष्ट मामला सिद्ध और साबित किया गया है । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों को ठीक ही क्रमश: भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया था । अन्यथा भी, भारतीय दंड संहिता की धारा 326 पर विचार करने पर हमारी समझ में नहीं आता कि कैसे यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन आएगा जबकि मृतक की मृत्यु वास्तव में घोर उपहति के कारण हुई थी और क्षतियां शरीर के मार्मिक अंग-सिर पर थीं । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि वास्तव में अभियुक्त शिकायतकर्ता के खेत पर गए थे जहां उसका पिता मृतक राम अवतार भी कार्य कर रहा था । वे सभी घातक आयुधों के साथ गए और मृतक राम अवतार की पिटाई की तथा गंभीर क्षतियां कारित कीं और मृतक राम अवतार को तुरंत अस्पताल ले जाना आवश्यक था और उसे पहले प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया था और उसके पश्चात् लखनऊ स्थित अस्पताल ले जाया गया था जहां क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । ऊपर उल्लिखित कारणों से भी उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 326

के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करके गंभीर गलती की थी । अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त करते हुए और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है और अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है तथा विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित किया जाना अपेक्षित है । (पैरा 7.1, 7.2 और 7.3)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 37.

1987 की दांडिक अपील सं. 870 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 18 सितंबर, 2019 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राणा मुखर्जी, ज्येष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सलमान खुर्शीद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – उत्तर प्रदेश राज्य ने 1987 की दांडिक अपील सं. 870 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 सितंबर, 2019 को पारित किए गए उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर यह अपील फाइल की है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने उक्त अपील को भागत: मंजूर किया था और अभियुक्तों की भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित कर दिया था ।

2. अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, जब मृतक अपने खेत में काम कर रहा था, तो सभी अभियुक्त वहां पहुंचे और उससे गाली-गलौच करने लगे । सभी अभियुक्तों द्वारा मृतक की पिटाई की गई । सभी अभियुक्तों के पास विभिन्न आयुध थे । उन सभी ने मृतक की पिटाई करनी शुरू कर दी, जिसके परिणामस्वरूप उसे कई सारी क्षतियां पहुंचीं और बाद में उसकी गंभीर हालत पर विचार करते हुए उसे लखनऊ स्थित

अस्पताल ले जाया गया, जहां लगभग छह दिनों के पश्चात् क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । अभियुक्त सं. 1 जय दत्त, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोपित और विचारित किया गया था, को छोड़कर सभी अभियुक्त व्यक्तियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराधों के लिए आरोपित और उनका विचारण किया गया था । अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने कई सारे साक्षियों की परीक्षा की, जिनमें अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे । अभि. सा. 8-डा. पी. आर. मिश्रा, जिसने मृतक के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी, की परीक्षा करके अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट को लाया गया । विचारण न्यायालय ने जय दत्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अन्य अभियुक्तों लाल बहादुर, शेर सिंह और शास्त्री को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और उन्हें आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया ।

2.1 सभी अभियुक्तों ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की । अपील के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त लाल बहादुर और शेर सिंह का देहांत हो गया था । अत: उन व्यक्तियों के संबंध में अपील का उपशमन हो गया था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा शेष अभियुक्तों जय दत्त और शास्त्री के संबंध में उक्त अपील को भागत: मंजूर किया और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन दोषसिद्धि में मुख्य रूप से इस आधार पर संपरिवर्तित कर दिया कि मृतक की मृत्यु घटना से छह दिनों के पश्चात् हुई थी और सिर का अस्थि-भंग नहीं पाया गया था । उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के

अधीन अपराध के लिए केवल दो वर्ष का दंडादेश अधिरोपित किया और इसका आधार यह था कि घटना लगभग 36 वर्ष पहले घटी थी और इसलिए दो वर्ष का दंडादेश अधिरोपित करना न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए पर्याप्त होगा ।

2.2 उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 से भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य ने यह अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री राणा मुखर्जी ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले के तथ्य और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 से भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित करके तात्विक रूप से गलती की थी ।

3.1 विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री मुखर्जी द्वारा यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने विनिर्दिष्ट तौर पर अभियुक्तों के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया था क्योंकि वे मृतक के खेत पर गए थे और गाली-गलौच करने लगे थे तथा आयुधों का प्रयोग किया था और क्षतियां कारित की थीं । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है और अभिनिर्धारित किया है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पूरी तरह से विश्वसनीय हैं और उनके कथनों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है । यह दलील दी गई कि उपरोक्त के बावजूद जब मृतक की मृत्यु सिर पर पहुंची क्षति के कारण हुई थी, तो हत्या का एक स्पष्ट मामला सिद्ध किया गया था और इसलिए उच्च न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित नहीं करना चाहिए था ।

3.2 यह दलील दी गई कि मात्र इस कारण कि मृतक की मृत्यु छह दिनों के पश्चात् हुई थी, यह बात भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में

संपरिवर्तित करने का आधार नहीं हो सकता था । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में वर्णित क्षतियों और मृत्यु के कारण का कतई मूल्यांकन नहीं किया था और/या विचार नहीं किया था । यह दलील दी गई थी कि मात्र इस कारण कि सिर पर कोई अस्थिभंग नहीं पाया गया था, यह बात भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अभियुक्तों को दोषसिद्ध न करने का आधार नहीं हो सकता है । यह दलील दी गई कि किसी मामले में प्रस्तुत मामले की तरह व्यक्ति की मृत्यु आंतरिक क्षतियों के कारण हो सकती है । यह दलील दी गई कि इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित करते हुए दिए गए कारण को अनुचित कहा जा सकता है ।

4. प्रत्यर्थी-अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सलमान खुर्शीद द्वारा वर्तमान अपील का जोरदार रूप से विरोध किया गया ।

4.1 अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री खुर्शीद द्वारा जोरदार रूप से यह दलील दी गई कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और मृतक के सिर पर कोई अस्थिभंग नहीं पाया गया था तथा उसकी मृत्यु घटना के छह दिनों के पश्चात् हुई थी और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि क्षतियां अधिक गंभीर और/या घोर नहीं थी, उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को ठीक ही भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त किया था और इसे ठीक ही भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित किया था । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री खुर्शीद द्वारा यह दलील दी गई कि जब मृतक को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया था, तब अभि. सा. 6 डा. बी. एल. कटियार ने, जिसने क्षतिग्रस्त राम अवतार (जिसकी बाद में मृत्यु हो गई थी) की एमएलसी की थी, नौ क्षतियां पाई थीं जो साधारण प्रकृति की थीं । अत: यह दलील दी गई कि यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन नहीं आता है, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है और अभिनिर्धारित

किया गया है ।

4.2 अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री खुर्शीद द्वारा यह दलील दी गई कि वास्तव में घटना तत्क्षण घटी थी और छुट-पुट विवाद को लेकर झगड़ा हुआ था, इसलिए यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन नहीं आएगा ।

5. उपरोक्त दलीलें देने के पश्चात् इस अपील को खारिज करने का अनुरोध किया गया, विशिष्ट रूप से जब उच्च न्यायालय ने पहले ही आक्षेपकर्ता रमन बाबू को दो लाख रुपए के प्रतिकर का संदाय करने का आदेश पारित किया है ।

6. हमने संबंधित पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना ।

7. प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के चिकित्सीय साक्ष्य तथा प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य का अवलंब लेकर अभियुक्तों को मृतक राम अवतार को जान से मारने/हत्या करने के लिए क्रमश: भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था । तथापि, अभियुक्तों द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पूर्णत: विश्वसनीय हैं और उनके कथनों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है । यद्यपि उच्च न्यायालय ने अभियोजन की ओर से इस पक्षकथन को स्वीकार किया था कि तारीख 20 दिसंबर, 1983 को सायंकाल में सभी चारों अभियुक्त व्यक्ति शिकायतकर्ता के खेत में घुसे और मृतक राम अवतार से गाली-गलौच करने लगे तथा सभी अभियुक्त व्यक्ति अपने साथ विभिन्न आयुध लिए हुए थे और वे सभी मृतक की पिटाई करने लगे थे जिसके परिणामस्वरूप उसके शरीर पर कई सारी क्षतियां पहुंची थीं और उसके पश्चात् राम अवतार को अस्पताल ले जाया गया था तथा बाद में क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी, तो भी उच्च न्यायालय ने भारतीय

दंड संहिता की धारा 302 को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में इस आधार पर संपरिवर्तित कर दिया कि मृतक की मृत्यु घटना के छह दिनों के पश्चात् हुई थी और उसके सिर पर कोई अस्थिभंग नहीं पाया गया था । तथापि, उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में वर्णित क्षतियों पर कतई विचार नहीं किया था । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार राम अवतार के शव पर मृत्यु-पूर्व की निम्नलिखित क्षतियां पाई गई थीं :–

"1. सिर पर बाईं तरफ बाईं भौंह के ऊपर 8 से. मी. × 6 सें. मी. का पपड़ीदार अपघर्षित नील ।

2. बाएं स्कंधास्थि क्षेत्र पर 9 सें. मी. × 5 सें. मी. का पपड़ीदार अपघर्षित नील ।

3. नितंब पर बाईं तरफ 6 सें. मी. × 5 सें. मी. का पपड़ीदार अपघर्षित नील ।

4. मेरुदंड की 5वीं कटि कशेरुका पर 4 सें. मी. × 4 सें. मी. का अपघर्षित नील ।

5. बाईं टांग के मध्य के सामने के भाग पर 1.5 सें. मी. × 0.5 सें. मी. × मांसपेशी की गहराई तक संक्रमित घाव ।

6. बाईं टांग के ऊपरी आधे भाग पर 18 सें. मी. × 2 सें. मी. के क्षेत्र में कई सारे पपड़ीदार अपघर्षित नील ।

7. दाईं टांग के सामने के भाग पर 22 सें. मी. × 2 सें. मी. के क्षेत्र पर पपड़ीदार खरोंच ।"

7.1 डा. पी. आर. मिश्रा-अभि. सा. 8, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने मस्तिष्क का आवरण खोलने पर मस्तिष्क को संकुलित, दोनों कनपटियों के पिंडक पर सबड्यूरल हेमेटोमा (मस्तिष्क की सतह के नीचे रक्त का थक्का) पाया था । डाक्टर के अनुसार मृतक की मृत्यु सिर पर की क्षति सं. 1 के कारण हुई थी । पूर्वोक्त क्षतियां, विशिष्ट रूप से सिर पर क्षति सं. 1, घातक थी और उक्त क्षतियों के कारण मृतक की मृत्यु हुई थी । मात्र यह कारण कि मृतक की मृत्यु छह दिनों के पश्चात् हुई

थी, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि को अपास्त करने और इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित करने का आधार नहीं हो सकता था । मृतक को पहले प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया था, तथापि, उसकी हालत गंभीर पाई गई थी और इसलिए उसे तारीख 20 दिसंबर, 1983 को लखनऊ स्थित अस्पताल ले जाया गया था और उसके पश्चात् उपचाराधीन रहते हुए तारीख 26 दिसंबर, 1983 को उसकी मृत्यु हो गई थी और मृत्यु का मुख्य कारण सिर पर क्षति सं. 1 पाया गया था । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यद्यपि उच्च न्यायालय ने नौ क्षतियों का उल्लेख किया था, जो डाक्टर बी. एल. कटियार, चिकित्सा अधिकारी, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र द्वारा पाई गई थीं, तो भी उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में उल्लिखित राम अवतार के शव पर पाई गई मृत्यु-पूर्व की क्षतियों की कतई अवेक्षा नहीं की थी और/या विचार नहीं किया था । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है और चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार भी, मृत्यु का कारण सिर पर की क्षति सं. 1 थी । आयुध का प्रयोग शरीर के मार्मिक अंग-सिर पर किया गया था और अंततोगत्वा यह घातक साबित हुआ और सिर पर क्षति सं. 1 के कारण मृतक की मृत्यु हुई थी । अत: तनिक संदेह के बिना यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन नहीं आएगा ।

7.2 उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में संपरिवर्तित करने के लिए दिया गया एक अन्य कारण यह है कि सिर पर कोई अस्थिभंग नहीं पाया गया था । तथापि, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि मृतक की मृत्यु आंतरिक क्षतियों के कारण हुई थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार सिर पर क्षति पाई गई है । सिर पर क्षति सं. 1 को इसमें ऊपर उद्धृत किया गया है । डा. पी. आर. मिश्रा अभि. सा. 8, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, के अनुसार मस्तिष्क के आवरण को खोलने पर उसे मस्तिष्क को संकुलित, दोनों कनपटियों के पिंडक पर सबड्यूरल हेमेटोमा पाया था । इसलिए मात्र इस कारण कि कोई अस्थि-भंग होने का उल्लेख नहीं किया

गया था और/या पाया गया था, मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बाहर नहीं लाया जा सकता है जबकि मृतक की मृत्यु सिर पर क्षति सं. 1 के कारण हुई थी । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, सिर पर क्षति कारित करना शरीर के मार्मिक अंग पर क्षति कारित करना कहा जा सकता है और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन एक स्पष्ट मामला सिद्ध और साबित किया गया है । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों को ठीक ही क्रमश: भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया था ।

7.3 अन्यथा भी, भारतीय दंड संहिता की धारा 326 पर विचार करने पर हमारी समझ में नहीं आता कि कैसे यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन आएगा जबकि मृतक की मृत्यु वास्तव में घोर उपहति के कारण हुई थी और क्षतियां शरीर के मार्मिक अंग-सिर पर थीं । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि वास्तव में अभियुक्त शिकायतकर्ता के खेत पर गए थे जहां उसका पिता मृतक राम अवतार भी कार्य कर रहा था । वे सभी घातक आयुधों के साथ गए और मृतक राम अवतार की पिटाई की तथा गंभीर क्षतियां कारित कीं और मृतक राम अवतार को तुरंत अस्पताल ले जाना आवश्यक था और उसे पहले प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया था और उसके पश्चात् लखनऊ स्थित अस्पताल ले जाया गया था जहां क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । ऊपर उल्लिखित कारणों से भी उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करके गंभीर गलती की थी । अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त करते हुए और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है और अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है तथा विचारण न्यायालय

द्वारा पारित निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित किया जाना अपेक्षित है ।

8. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए और इसमें ऊपर उल्लिखित कारणों से यह अपील सफल होती है । उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त-प्रत्यर्थी जय दत्त और शास्त्री को क्रमश: भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त करते हुए और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । विद्वान् विचारण न्यायालय के अभियुक्त जय दत्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए और अभियुक्त-शास्त्री को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश को तद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है । प्रत्यर्थी-अभियुक्तों को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा यथाअधिरोपित जुर्माने सहित आजीवन कारावास भुगतने के लिए दंडादिष्ट किया जाता है । अब दोनों अभियुक्तों को आजीवन कारावास भुगतने के लिए तुरंत अभिरक्षा में लिया जाए । तदनुसार, यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2022] 1 उम. नि. प. 222

सुनील कुमार

बनाम

बिहार राज्य और एक अन्य

[2022 की दांडिक अपील सं. 95]

25 जनवरी, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति संजीव खन्ना

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 439 – जमानत पर छोड़ा जाना – अभियुक्त और सह-अभियुक्तों द्वारा गोली मारकर मृतक की हत्या किया जाना और इत्तिलाकर्ता को भी क्षतिग्रस्त किया जाना – सेशन न्यायालय द्वारा अपराध की गंभीरता को देखते हुए अभियुक्त-प्रत्यर्थी (सं. 2) के जमानत के लिए आवेदन को खारिज किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना और जमानत प्रदान करते हुए कोई कारण अभिलिखित न किया जाना – संधार्यता – जहां अभियुक्त की आपराधिक पृष्ठभूमि रही हो और वह मृतक और क्षतिग्रस्त इत्तिलाकर्ता के पिता और भाई की पूर्व में की गई हत्या के दोहरे मामले में अंतर्ग्रस्त रहा हो और जिसका अभी विचारण होना है तथा उसके विरुद्ध इत्तिलाकर्ता और साक्षियों पर दबाव डालने के अभिकथन किए गए हों, वहां उच्च न्यायालय द्वारा अपराध की घोरता, प्रकृति और गंभीरता पर विचार न करते हुए कोई कारण अभिलिखित किए बिना अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है और ऐसे आदेश को रद्द करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-इत्तिलाकर्ता-मृतक (श्रद्धानंद भगत) के कनिष्ठ भाई ने पुलिस थाना वैशाली, बिहार में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित सभी अभियुक्तों के विरुद्ध उनके द्वारा उसके ज्येष्ठ भाई श्रद्धानंद भगत पर हमला और हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 341, 323, 324, 427, 504, 506, 307 और 302 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन

अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की थी । घटना की दुर्भाग्यपूर्ण तारीख को अभियुक्त रामअवतार भगत (प्रत्यर्थी सं. 2) और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित अन्य अभियुक्त प्राणहर आयुधों से लैस होकर इत्तिलाकर्ता के बांसों के झुरमुट में आए और बांस काटने लगे । उसका भाई श्रद्धानंद भगत उन्हें रोकने के लिए गया । इस पर अभियुक्त रामअवतार भगत ने श्रद्धानंद भगत को जान से मारने का आदेश दिया और इसके पश्चात् श्रद्धानंद भगत वहां से भागने लगा, किंतु उसका पीछा किया गया और उसे सभी अभियुक्तों द्वारा घेर लिया गया । इसके पश्चात् सह-अभियुक्त मनीष कुमार ने उस पर अपनी राइफल से गोली चला दी, जिसके कारण श्रद्धानंद भगत क्षतिग्रस्त हो गया और नीचे गिर गया तथा जब इत्तिलाकर्ता उसे बचाने के लिए गया, तो सह-अभियुक्त अर्थात् रामबाबू कुमार ने इत्तिलाकर्ता पर दो गोलियां दागी जिसके कारण इत्तिलाकर्ता भी कुछ सीमा तक क्षतिग्रस्त हो गया । इसके पश्चात् सभी अभियुक्तों ने लाठी, डंडों से इत्तिलाकर्ता पर बर्बरतापूर्वक हमला किया । जब सह-ग्रामवासी वहां एकत्रित होने लगे तब सभी अभियुक्त वहां से भाग गए । उपचार के दौरान श्रद्धानंद भगत की गोलियों से पहुंची क्षति के कारण मृत्यु हो गई । इसलिए बाद में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 जोड़ी गई । प्रत्यर्थी सं. 2-रामअवतार भगत सहित सभी अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2-रामअवतार भगत द्वारा जमानत के लिए फाइल किए गए आवेदन को सेशन न्यायालय द्वारा तर्कपूर्ण कारण देते हुए और यह मत व्यक्त करते हुए नामंजूर कर दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त रामअवतार भगत और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित अन्य अभियुक्तों ने एक विधिविरुद्ध जमाव का गठन किया था और उसके पश्चात् श्रद्धानंद भगत की हत्या की थी । सेशन न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि जहां तक प्रत्यर्थी सं. 2-रामअवतार भगत का संबंध है, उसने इस जघन्य अपराध में सक्रिय रूप से भाग लिया था और इसलिए मामले की गंभीरता पर विचार करने के पश्चात् जमानत का कोई मामला नहीं बनता है । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करके उच्च न्यायालय में समावेदन किया और उच्च न्यायालय ने कोई तर्कपूर्ण कारण दिए बिना और यहां तक

कि कारित अपराध की गंभीरता और प्रकृति पर विचार किए बिना और केवल यह मत व्यक्त करने के पश्चात् जमानत प्रदान कर दी गई कि "परस्पर विरोधी दलीलों के साथ-साथ मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह न्यायालय जमानत प्रदान करने के प्रयोजनार्थ आवेदक के काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने के लिए तैयार है और आवेदक की जमानत मंजूर की जाती है ।" प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर मूल इत्तिलाकर्ता-मृतक के कनिष्ठ भाई, जो स्वयं एक क्षतिग्रस्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय ने यह अवधारण करने के लिए कि अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाए या नहीं, सुसंगत सामग्री पर विचार न करके गलती की थी । उच्च न्यायालय ने जमानत प्रदान करने के लिए सुसंगत बातों पर कतई ध्यान नहीं दिया था । यहां तक कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त के आपराधिक पूर्ववृत्त पर भी कतई विचार नहीं किया था । यद्यपि इत्तिलाकर्ता की ओर से यह बताया गया था कि अभियुक्त दो मामलों में अंतर्ग्रस्त है और यह कि अपीलार्थी (इत्तिलाकर्ता) को अभियुक्त के विरुद्ध लंबित पूर्ववर्ती मामलों में आगे कार्यवाही करने के लिए अवरुद्ध किया गया था, तो भी उच्च न्यायालय ने आसानी से इस बात को अनदेखा कर दिया और इस पर कतई विचार नहीं किया था । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की ओर से दी गई इस दलील पर विचार किया था कि एक अन्य अभियुक्त-शशिभूषण भगत को जमानत पर छोड़ा गया है । तथापि, उच्च न्यायालय ने इस बात पर कतई विचार नहीं किया था कि क्या शशिभूषण भगत का मामला प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त-रामअवतार भगत के मामले के समान है या नहीं । यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने यांत्रिक रूप से और अत्यधिक लापरवाही रीति में आदेश पारित किया था । प्रस्तुत मामले के तथ्यों को इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि को लागू करते हुए और अति विशिष्ट रूप से इस तथ्य पर

विचार करते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है और उसका आपराधिक पूर्ववृत्त है तथा इत्तिलाकर्ता के पिता और भाई की हत्या करने के दोहरे मामले में अंतर्ग्रस्त है और इन मामलों का विचारण साक्ष्य अभिलिखित करने के महत्वपूर्ण प्रक्रम पर है तथा इत्तिलाकर्ता और साक्षियों पर दबाव डालने के अभिकथन किए गए हैं इसलिए प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश पूर्णतया असंधार्य है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता है । उच्च न्यायालय ने अभिकथित अपराधों की घोरता, प्रकृति और गंभीरता पर कतई विचार नहीं किया था । (पैरा 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	(2021) 6 एस. सी. सी. 230 : **रमेश भावन राठोड़** बनाम **विशनभाई हीराभाई मकवाना (कोली) और अन्य** ;	3.1, 8
[2021]	2021 की दांडिक अपील सं. 1279, तारीख 29 अक्तूबर, 2021 को विनिश्चित : **भूपेन्द्र सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य और एक अन्य** ;	3.2
[2020]	(2020) 2 एस. सी. सी. 118 : **महिपाल** बनाम **राजेश कुमार** ;	3.1
[2018]	(2018) 12 एस. सी. सी. 129 : **अनिल कुमार यादव** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)** ;	3.3, 9
[2016]	(2016) 15 एस. सी. सी. 422 : **नीरू यादव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ।	10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 95.

2021 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 13149 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 17 अगस्त, 2021 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ऋतुराज विश्वास, ऋतुराज चौधरी, चंदन कुमार, मायन प्रसाद और (सुश्री) सुजाया बर्धन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री देवाशीष भरुका, (सुश्री) सर्वाश्री, जस्टिन जॉर्ज, मानस स्याल और अतुल कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – यह अपील मूल इत्तिलाकर्ता-मृतक के कनिष्ठ भाई ने 2021 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 13149 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 17 अगस्त, 2021 को पारित किए गए उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर फाइल की है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2-मूल अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 341, 323, 324, 427, 504, 506, 307 और 302 तथा आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए वैशाली पुलिस थाना के 2020 के अभिकथित मामला सं. 328 के संबंध में जमानत पर छोड़ दिया था ।

2. इस अपील में अपीलार्थी-इत्तिलाकर्ता-मृतक श्रद्धानंद भगत के कनिष्ठ भाई ने पुलिस थाना वैशाली, बिहार में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित सभी अभियुक्तों के विरुद्ध उनके द्वारा उसके ज्येष्ठ भाई श्रद्धानंद भगत पर हमला और हत्या करने के लिए, जिसकी गोली लगने से पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई थी, भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 341, 323, 324, 427, 504, 506, 307 और 302 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की थी । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, घटना की दुर्भाग्यपूर्ण तारीख को अभियुक्त रामअवतार भगत (प्रत्यर्थी

सं. 2) और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित अन्य अभियुक्त प्राणहर आयुधों से लैस होकर इत्तिलाकर्ता के बांसों के झुरमुट में आए और बांस काटने लगे । इसलिए उसका भाई श्रद्धानंद भगत उन्हें रोकने के लिए गया । इस पर अभियुक्त रामअवतार भगत ने श्रद्धानंद भगत को जान से मारने का आदेश दिया और इसके पश्चात् श्रद्धानंद भगत वहां से भागने लगा, किंतु उसका पीछा किया गया और उसे सभी अभियुक्तों द्वारा घेर लिया गया । इसके पश्चात् सह-अभियुक्त मनीष कुमार ने उस पर अपनी राइफल से गोली चला दी, जिसके कारण श्रद्धानंद भगत क्षतिग्रस्त हो गया और नीचे गिर गया तथा जब इत्तिलाकर्ता उसे बचाने के लिए गया, तो सह-अभियुक्त अर्थात् रामबाबू कुमार ने इत्तिलाकर्ता पर दो गोलियां दागी जिसके कारण इत्तिलाकर्ता भी कुछ सीमा तक क्षतिग्रस्त हो गया । इसके पश्चात् सभी अभियुक्तों ने लाठी, डंडों से इत्तिलाकर्ता पर बर्बरतापूर्वक हमला किया । जब सह-ग्रामवासी वहां एकत्रित होने लगे तब सभी अभियुक्त वहां से भाग गए । बाद में, दोनों क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को उपचार के लिए सदर हाजीपुर लाया गया और उसके पश्चात् उन्हें पी. एम. सी. एच. के लिए रेफर किया गया ।

2.1 उपचार के दौरान श्रद्धानंद भगत की गोलियों से पहुंची क्षति के कारण मृत्यु हो गई । इसलिए बाद में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 जोड़ी गई । प्रत्यर्थी सं. 2-रामअवतार भगत सहित सभी अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2-रामअवतार भगत द्वारा जमानत के लिए फाइल किए गए आवेदन को सेशन न्यायालय द्वारा तर्कपूर्ण कारण देते हुए और यह मत व्यक्त करते हुए नामंजूर कर दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त रामअवतार भगत और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित अन्य अभियुक्तों ने एक विधिविरुद्ध जमाव का गठन किया था और उसके पश्चात् श्रद्धानंद भगत की हत्या की थी । सेशन न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि जहां तक प्रत्यर्थी सं. 2-रामअवतार भगत का संबंध है, उसने इस जघन्य अपराध में सक्रिय रूप से भाग लिया था और इसलिए मामले की गंभीरता पर विचार करने के पश्चात् जमानत का कोई मामला नहीं बनता है । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करके उच्च न्यायालय में समावेदन किया और उच्च न्यायालय ने

आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा कोई तर्कपूर्ण कारण दिए बिना और यहां तक कि कारित अपराध की गंभीरता और प्रकृति पर विचार किए बिना जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और अभियुक्त तथा राज्य की ओर से दी गई दलीलों का उल्लेख करने के पश्चात् तथा यह मत व्यक्त करने के पश्चात् जमानत प्रदान की गई कि "परस्पर विरोधी दलीलों के साथ-साथ मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह न्यायालय जमानत प्रदान करने के प्रयोजनार्थ आवेदक के काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने के लिए तैयार है और आवेदक की जमानत मंजूर की जाती है ।"

2.2 प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर मूल इत्तिलाकर्ता-मृतक के कनिष्ठ भाई, जो स्वयं एक क्षतिग्रस्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, ने यह अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री ऋतुराज चौधरी ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त को एक ऐसे मामले में जमानत पर छोड़ने में गंभीर गलती की है, जिसमें एक व्यक्ति की हत्या की गई है ।

3.1 जोरदार रूप से यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ते समय, सिवाय दलीलों का उल्लेख करने के पश्चात् यह मत व्यक्त करते हुए कि परस्पर विरोधी दलीलों के साथ-साथ मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए न्यायालय जमानत प्रदान करने के लिए तैयार है, कोई कारण नहीं दिए गए हैं । यह दलील दी गई कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किए गए अनुसार, पूर्वोक्त को मुश्किल से यह कहा जा सकता है कि ये अभियुक्त को जमानत पर छोड़ते हुए दिए जाने वाले पर्याप्त कारण हैं । **रमेश भावन राठोड़** बनाम **विशनभाई हीराभाई मकवाना (कोली) और अन्य**[1] तथा **महिपाल** बनाम **राजेश कुमार**[2]

---

[1] (2021) 6 एस. सी. सी. 230.

[2] (2020) 2 एस. सी. सी. 118.

वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया गया ।

3.2 अत: यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त विनिश्चयों में तथा **भूपेन्द्र सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के हाल ही के विनिश्चय में अधिकथित की गई विधि के एकदम प्रतिकूल है ।

3.3 आगे यह भी दलील दी गई कि अन्यथा भी उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त को जमानत पर छोड़ते हुए इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों, जिसमें **अनिल कुमार यादव** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)**[2] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय भी है, अधिकथित की गई विधि के अनुसार जमानत प्रदान करते समय सुसंगत बातों पर कतई विचार नहीं किया था ।

3.4 यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की पूर्ववर्ती पृष्ठभूमि की भी पूर्णतया अनदेखी की थी । यह दलील दी गई कि यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने एक अन्य सह-अभियुक्त शशिभूषण भगत के मामले से समानता की थी, जिसे जमानत मंजूर की गई है । तथापि, यह दलील दी गई कि जहां तक सह-अभियुक्त शशिभूषण भगत के मामले का संबंध है, उच्च न्यायालय ने सुभिन्न और विशिष्ट विशेषताओं का कतई मूल्यांकन नहीं किया था । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय को इस बात का मूल्यांकन करना चाहिए था कि सह-अभियुक्त शशिभूषण भगत का मामला प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त के मामले से भिन्न है । यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर भी कतई विचार नहीं किया था कि पूर्व में प्रत्यर्थी सं. 2 हत्या के दोहरे मामले में भी अभियुक्त है । वह इत्तिलाकर्ता के पिता और कनिष्ठ भाई की हत्या में अंतर्ग्रस्त है और जिनकी बाबत उसके विरुद्ध मामले लंबित हैं और विचारण साक्ष्य अभिलिखित करने के प्रक्रम पर है । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का कतई उल्लेख

---

[1] 2021 की दांडिक अपील सं. 1279, तारीख 29 अक्तूबर, 2021 को विनिश्चित ।

[2] (2018) 12 एस. सी. सी. 129.

और/या मूल्यांकन नहीं किया था कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त इत्तिलाकर्ता को यह धमकी दे रहा है और दबाव बना रहा है कि वह या तो पूर्वोक्त सेशन विचारण को वापस ले ले या पूर्वोक्त मामले में पक्षद्रोही हो जाए क्योंकि विचारण साक्ष्य के प्रक्रम पर है । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त सुसंगत पहलुओं पर कतई विचार नहीं किया था, जो प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ने के लिए जमानत प्रदान करते समय विचार करने के लिए अत्यधिक तात्विक हैं ।

4. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री देवाशीष भरुका ने अपीलार्थी का समर्थन किया और यह दलील दी कि अन्वेषण समाप्त होने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 को अपीलार्थी के ज्येष्ठ भाई-श्रद्धानंद भगत की हत्या करने/जान से मारने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 302, 34 और 447 के अधीन अपराध के लिए आरोप-पत्रित किया गया है । यह दलील दी गई कि अत: उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के ऐसे गंभीर मामले में जमानत पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए था ।

5. प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अतुल कुमार द्वारा इस अपील का जोरदार रूप से विरोध किया गया । पुरजोर रूप से यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की ओर से दी गई दलीलों को स्वीकार करने और मामले के सभी तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् अभियुक्त-प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ा था और इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

5.1 यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक 70 वर्षीय वृद्ध वरिष्ठ नागरिक है जो विभिन्न रोगों से ग्रस्त है और उसका अभिकथित अपराधों से कोई लेना-देना नहीं है । यह दलील दी गई कि पूर्ववर्ती दो मामलों में उसकी अभिकथित अंतर्ग्रस्तता को माननीय न्यायालय से जमानत के लिए आवेदन करते समय या दलीलें देते समय छिपाया नहीं गया था और उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में भी इसकी चर्चा

की गई है ।

5.2 यह भी दलील दी गई कि अन्यथा भी अन्य मामलों में साक्ष्य लगभग पूर्ण हो चुका है और केवल डाक्टर तथा अन्वेषक अधिकारी की परीक्षा की जानी शेष है । यह दलील दी गई कि पूर्ववर्ती मामले में प्रत्यर्थी-अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा गया है और 30 वर्षों से उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान की गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने का कोई अभिकथन नहीं है ।

5.3 उपरोक्त दलीलें देते हुए यह अनुरोध किया गया कि जमानत को रद्द न किया जाए और/या प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप न किया जाए ।

6. हमने संबंधित पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना । हमने प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश का भी परिशीलन किया ।

7. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से यह देखा जा सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ते समय किसी प्रकार के कोई कारण नहीं दिए गए हैं । अभियुक्त और राज्य की ओर से हाजिर होने विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलें अभिलिखित करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने केवल यह मत व्यक्त किया कि "परस्पर विरोधी दलीलों के साथ-साथ मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर भी विचार करते हुए यह न्यायालय जमानत प्रदान करने के प्रयोजनार्थ आवेदक की ओर से काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने के लिए तैयार है । जमानत के लिए आवेदक के अनुरोध को मंजूर किया जाता है ।" आगे कतई कोई कारण नहीं दिया गया है । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथित अपराधों की घोरता, प्रकृति और गंभीरता पर विचार नहीं किया है । **महिपाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभियुक्त को जमानत प्रदान करते समय संक्षिप्त कारण देने की बात पर बल देते हुए पैरा 24 से 27 में

निम्नलिखित मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है :–

"24. एक कारण और है कि क्यों विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय में गलती की गई है । जमानत प्रदान करने या नामंजूर करने के आदेश में उन कारणों को अभिलिखित करना, जिन पर न्यायालय द्वारा अपनी वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करने के लिए विचार किया गया है, न्यायिक अनुशासन की एक युक्तियुक्त कवायद है । प्रस्तुत मामले में (राजेश कुमार **बनाम** राजस्थान राज्य, 2019 एस. सी. सी. ऑनलाइन राज. 5197), उच्च न्यायालय द्वारा किया गया निर्धारण आवश्यक रूप से केवल एक पैरा में अंतर्विष्ट है जो निम्न प्रकार से है –

'4. याची की ओर काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा मामले के गुणागुण पर राय व्यक्त किए बिना यह न्यायालय यह न्यायसंगत और उचित समझता है कि याची को जमानत पर छोड़ दिया जाए ।'

25. 'मामले का परिशीलन करने' और 'मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर' अभिलिखित करने मात्र से एक सकारण न्यायिक आदेश के प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती है । निष्पक्ष न्याय का, जिसके प्रति हमारी न्यायिक व्यवस्था प्रतिबद्ध है, एक मूलभूत आधार यह है कि जमानत नामंजूर करने या प्रदान करने के लिए न्यायाधीश के मस्तिष्क में जिन बातों पर विचार-मनन किया गया है, उन्हें पारित किए गए आदेश में अभिलिखित किया जाना चाहिए । निष्पक्ष न्याय इस धारणा पर आधारित है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए अपितु यह स्पष्ट रूप से और निस्संदेह किया गया दिखाई भी देना चाहिए । सकारण विनिश्चय देने का न्यायाधीशों का कर्तव्य इस प्रतिबद्धता में निहित है । जमानत प्रदान करने के प्रश्नों का सरोकार दांडिक अभियोजन का सामना कर रहे व्यक्तियों की स्वाधीनता के साथ-साथ यह सुनिश्चित करने के लिए दांडिक न्याय व्यवस्था के हित में भी है कि वे जो अपराध करते हैं, उन्हें न्याय में बाधा डालने का अवसर

न मिले । न्यायाधीश उस आधार को स्पष्ट करने के लिए कर्तव्याबद्ध हैं जिस आधार पर वे किसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं ।

26. कल्याण चंद्र सरकार **बनाम** राजेश रंजन [(2004) 7 एस. सी. सी. 528] वाले मामले में इस न्यायालय की एक दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ से अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने के एक उच्च न्यायालय के विनिश्चय [राजेश रंजन **बनाम** बिहार राज्य, 2002 का दांडिक प्रकीर्ण सं. 28189, तारीख 23 मई, 2003 (पटना)] की शुद्धता का अवधारण करने की अपेक्षा की गई थी । न्यायमूर्ति संतोष हेगड़े द्वारा न्यायालय की ओर से निर्णय लिखते हुए अजमानतीय अपराधों में जमानत प्रदान करने से संबंधित विधि की चर्चा की गई और यह अभिनिर्धारित किया गया –

> '11. जमानत प्रदान करने या इनकार करने के विषय में विधि भली-भांति स्थिर है । न्यायालय को जमानत प्रदान करने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग एक न्याय-सम्मत रीति में करना चाहिए न कि एक स्वाभाविक रीति में । यद्यपि जमानत प्रदान करने के प्रक्रम पर साक्ष्य की विस्तार से परीक्षा करने और मामले के गुणागुण पर विस्तृत प्रलेखन करने की आवश्यकता नहीं है, तो भी ऐसे आदेशों में यह उपदर्शित करने की आवश्यकता है कि प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष के लिए वे कारण दिए जाएं कि जमानत क्यों मंजूर की जा रही है, विशिष्ट रूप से वहां, जहां अभियुक्त पर गंभीर अपराध कारित करने का आरोप है । ऐसा कोई कारण-विहिन आदेश मस्तिष्क का प्रयोग न करने से ग्रस्त होगा ।'

27. जहां जमानत से इनकार या प्रदान करने के आदेश में कारण नहीं दिए जाते हैं, वहां मस्तिष्क का प्रयोग न करने की उपधारणा की जाती है, जिनमें इस न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक हो सकता है । जहां जमानत के लिए पूर्ववर्ती आवेदन को नामंजूर कर दिया गया है, वहां अपील न्यायालय पर विनिर्दिष्ट कारण देने का और अधिक भार होता है कि जमानत क्यों मंजूर की जानी चाहिए ।"

8. **रमेश भावन राठोड़** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के हाल ही के विनिश्चय में इसी प्रकार का मत व्यक्त किया गया था । जमानत प्रदान करते समय संक्षिप्त कारण देने की बात पर बल देते हुए इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि यद्यपि यह एक सुस्थिर सिद्धांत है कि यह अवधारण करने के लिए कि क्या जमानत दी जानी चाहिए या नहीं, उच्च न्यायालय, या इस विषय के लिए, सेशन न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करते समय गुणागुण के आधार पर तथ्यों का विस्तृत मूल्यांकन नहीं करेगा, चूंकि अभी एक दांडिक विचारण होना है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि तथापि, न्यायालय जमानत प्रदान करते समय यह विनिश्चय करने के प्रयोजनार्थ कि जमानत मंजूर की जाए या नहीं, न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करने और कारण अभिलिखित करने के, चाहे वे संक्षेप में ही हों, अपने कर्तव्य की उपेक्षा नहीं कर सकता है । यह मत व्यक्त किया गया है कि जमानत के लिए आवेदन के परिणाम का एक ओर तो अभियुक्त की स्वाधीनता तथा दूसरी ओर दांडिक न्याय के सम्यक् प्रवर्तन में लोक हित का एक महत्वपूर्ण सरोकार है और साथ ही विपदग्रस्तों और उनके परिवारों के अधिकार भी दांव पर लगे होते हैं, इसलिए न्यायालय को जमानत प्रदान करते समय न्यायिक विवेक का प्रयोग करना चाहिए और यह विनिश्चय करने के प्रयोजनार्थ कारण अभिलिखित करने चाहिए कि क्या जमानत प्रदान की जानी चाहिए या नहीं । इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त विनिश्चय में पैरा 36 में यह भी मत व्यक्त किया गया है :–

> "36. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन जमानत प्रदान करना ऐसा विषय है जिसमें न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग अंतर्वलित है । जमानत प्रदान करने या इनकार करने में न्यायिक विवेकाधिकार वैसा असंरचनाबद्ध नहीं है, जैसा कि किसी अन्य विवेकाधिकार के मामले में है जो किसी न्यायालय में न्यायिक संस्था के रूप में निहित है । कारणों को अभिलिखित करने का कर्तव्य एक महत्वपूर्ण रक्षोपाय है जिससे यह सुनिश्चित होता है कि जो विवेकाधिकार न्यायालयों को सौंपा गया है, उसका

न्याय-सम्मत रीति में प्रयोग हो । किसी न्यायिक आदेश में कारणों को अभिलिखित करना यह सुनिश्चित करता है कि आदेश में अंतर्निहित विचार प्रक्रिया संवीक्षा के अध्यधीन है और इससे कारण और न्याय के वस्तुपरक मानकों की पूर्ति होती है ।"

9. अन्यथा भी, उच्च न्यायालय ने यह अवधारण करने के लिए कि अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाए या नहीं, सुसंगत सामग्री पर विचार न करके गलती की थी । उच्च न्यायालय ने जमानत प्रदान करने के लिए सुसंगत बातों पर कतई ध्यान नहीं दिया था । **अनिल कुमार यादव** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया था कि जमानत प्रदान करते समय सुसंगत बातें हैं – (i) अपराध की गंभीरता की प्रकृति ; (ii) साक्ष्य का स्वरूप और वे परिस्थितियां जो अभियुक्त के बारे में अद्भुत हैं ; अभियुक्त की न्याय से भाग जाने की संभावना ; (iv) उसके छोड़े जाने से अभियोजन साक्षियों पर पड़ने वाला असर, समाज पर इसका असर ; और (v) उसके द्वारा सांठ-गांठ करने की संभावना ।

10. यहां तक कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2 अभियुक्त के आपराधिक पूर्ववृत्त पर भी कतई विचार नहीं किया था । यद्यपि इत्तिलाकर्ता की ओर से यह बताया गया था कि अभियुक्त दो मामलों में अंतर्ग्रस्त है और यह कि अपीलार्थी (इत्तिलाकर्ता) को अभियुक्त के विरुद्ध लंबित पूर्ववर्ती मामलों में आगे कार्यवाही करने के लिए अवरुद्ध किया गया था, तो भी उच्च न्यायालय ने आसानी से इस बात को अनदेखा कर दिया और इस पर कतई विचार नहीं किया था । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की ओर से दी गई इस दलील पर विचार किया था कि एक अन्य अभियुक्त-शशिभूषण भगत को जमानत पर छोड़ा गया है । तथापि, उच्च न्यायालय ने इस बात पर कतई विचार नहीं किया था कि क्या शशिभूषण भगत का मामला प्रत्यर्थी सं. 2 अभियुक्त रामअवतार भगत के मामले के समान है या नहीं । यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने यांत्रिक रूप से और अत्यधिक लापरवाही रीति में आदेश पारित किया था । **नीरू यादव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले

[1] (2016) 15 एस. सी. सी. 422.

मामले में जमानत प्रदान करने का विनिश्चय करते समय संतुलन बनाए जाने वाली बातों पर इस न्यायालय के अनेक निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् पैरा 15 और 18 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :–

> "15. विधि की यह स्थिति होने के कारण, यह बात खुले आसमान की तरह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त के आपराधिक पूर्ववृत्त की पूरी तरह से अनदेखी की थी । उच्च न्यायालय ने जिस बात पर विचार किया था वह है समानता का सिद्धांत । एक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति, जो ऐसी प्रकृति के अपराधों में अंतर्ग्रस्त है, जिनका हमने इसमें ऊपर उल्लेख किया है, वे गौण अपराध नहीं हैं जिससे कि उसे अभिरक्षा में न रखा जाए अपितु वे अपराध जघन्य प्रकृति के हैं और ऐसे अपराधों को तनिक संदेह के बिना हल्के अपराध नहीं समझा जाता है । ऐसे मामलों से भूचाल आ सकता है और एक विश्लेषणपरक व्यक्ति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ सकता है । विधि इस प्रकार के अभियुक्त व्यक्तियों को उन्मुक्त करते समय न्यायपालिका से सचेत रहने की प्रत्याशा करती है और इसलिए विवेकाधिकार का प्रयोग न्याय-सम्मत रूप से करने पर बल दिया गया है न कि बेतुकी रीति में ।
>
> * * * *
>
> 18. इस मामले से विलग होने से पूर्व यह दोहराना उपयोगी होगा कि यह अपील जमानत रद्द करने के लिए नहीं है क्योंकि रद्दकरण की ईप्सा आकस्मिक परिस्थितियों के कारण नहीं की गई है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश के बातिलीकरण की ईप्सा इसलिए की गई है क्योंकि बहुत सारी सुसंगत बातों पर विचार नहीं किया गया था, जिनमें अभियुक्त का आपराधिक पूर्ववृत्त भी है और इससे आदेश विपथगामी बन गया है । अत: आक्षेपित आदेश को रद्द करना अपरिहार्य परिणाम है ।"

11. प्रस्तुत मामले के तथ्यों को पूर्वोक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि को लागू करते हुए और अति विशिष्ट रूप से इस तथ्य पर विचार करते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक

आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है और उसका आपराधिक पूर्ववृत्त है तथा इत्तिलाकर्ता के पिता और भाई की हत्या करने के दोहरे मामले में अंतर्ग्रस्त है और इन मामलों का विचारण साक्ष्य अभिलिखित करने के महत्वपूर्ण प्रक्रम पर है तथा इत्तिलाकर्ता और साक्षियों पर दबाव डालने के अभिकथन किए गए हैं इसलिए प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश पूर्णतया असंधार्य है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता है । उच्च न्यायालय ने अभिकथित अपराधों की घोरता, प्रकृति और गंभीरता पर कतई विचार नहीं किया था ।

12. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से यह अपील सफल होती है । उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ने के लिए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को जमानत पर छोड़ने के लिए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने पर अब प्रत्यर्थी सं. 2 अभियुक्त संबंधित जेल प्राधिकारी/संबंधित न्यायालय के समक्ष तुरंत अभ्यर्पण करेगा । तद्नुसार यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2022] 1 उम. नि. प. 238

सुभाष

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

[2022 की दांडिक अपील सं. 158-159]

1 फरवरी, 2022

न्यायमूर्ति (डा.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति सूर्यकांत और न्यायमूर्ति विक्रम नाथ

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 148 और धारा 149/302 – अपीलार्थियों सहित कई अभियुक्तों द्वारा मृतक पर हमला करके उसकी हत्या किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मृतक के भाई और एक अन्य साक्षी के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – अपील न्यायालय द्वारा अभियुक्तों की अपील को खारिज किया जाना – अभियुक्तों में से दो अभियुक्तों (अपीलार्थियों) द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील – जहां साक्षियों के साक्ष्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो रहा हो कि इत्तिलाकर्ता-साक्षी द्वारा प्रतिपरीक्षा के दौरान उसके द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्त-अपीलार्थियों के संबंध में उपवर्णित वृत्तांत और अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान दिए गए अभिसाक्ष्य में तात्विक सुधार करने का प्रयत्न किया गया हो और साक्षियों के साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास हो तथा मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में उपदर्शित क्षतियां अभियोजन के पक्षकथन के अनुरूप न हों, वहां अभियुक्त संदेह के फायदे के हकदार हैं और उन्हें दोषमुक्त करना न्यायोचित होगा ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतक के भाई इत्तिलाकर्ता ने पुलिस थाने में यह उल्लेख करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी कि घटना की तारीख को 11.00 बजे पूर्वाह्न में अपने भाई सुरेन्द्र के साथ गांव के कुएं के निकट एक खाट पर बैठा हुआ था और उसका पिता छत पर बैठा हुआ था । उस समय पर, राजाराम और

राजेश, जो पिस्तौलों से लैस थे, सुभाष और रामपाल जो देशी पिस्तौलों से लैस थे, शिव दयाल के पास कुल्हाड़ी थी और राजाराम की पत्नी ज्ञानवती (अपीलार्थी) के पास एक चाकू था, घटनास्थल पर पहुंचे । राजाराम, राजेश, सुभाष (अपीलार्थी) और रामपाल ने अभिकथित रूप से अपनी पिस्तौलों से उसके भाई सुरेन्द्र पर गोली चलाई । शिव दयाल, जो कुल्हाड़ी से लैस था और ज्ञानवती ने अभिकथित रूप से सुरेन्द्र की गर्दन पर हमला किया । इत्तिलाकर्ता ने यह भी कथन किया कि पूर्व में हुई अभियुक्त राजेश के पिता की हत्या में मृतक अभियुक्त था, जिसके लिए न्यायालय के समक्ष विचारण चल रहा था । सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्तों को मुख्य रूप से मृतक के भाई इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 1) और अभि. सा. 2, जिसने अभिकथित रूप से घटना देखी थी, के साक्ष्य के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और धारा 149/302 के अधीन दोषी पाया और उन्हें दंडादिष्ट किया गया । अभियुक्तों द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि की गई । दो सिद्धदोष व्यक्तियों सुभाष (अभियुक्त सं. 3) और ज्ञानवती (अभियुक्त सं. 6) द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के अभिसाक्ष्य पर आधारित है । अभि. सा. 1 वेदराम, जो इत्तिलाकर्ता है, ने अपने अभिसाक्ष्य के दौरान यह कथन किया था कि घटना से पूर्व अभियुक्त राजेश के पिता की हत्या का एक मामला चल रहा था । उस मामले में अभि. सा. 1 की तरह मृतक सुरेन्द्र भी एक अभियुक्त था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में घटना के बारे में वेदराम का वृत्तांत यह है कि घटना की तारीख को लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह मृतक के साथ गांव के कुएं के निकट एक चारपाई पर बैठा हुआ था, तब राजेश, सुभाष और रामपाल ने अपनी देशी पिस्तौलों से गोलियां चलाईं और गोलियां उसके भाई सुरेन्द्र को लगी थीं । इसके अतिरिक्त, उसने यह कथन किया था कि शिव दयाल, जो एक फरसा लिए हुए था और ज्ञानवती (राजाराम की पत्नी), जो एक चाकू लिए हुए थी, दोनों ने

मृतक की गर्दन पर हमला किया था । मुख्य परीक्षा के दौरान, यह भी कथन किया गया था कि शिव दयाल और ज्ञानवती ने मृतक की गर्दन पर हमला किया था । यद्यपि, अभि. सा. 1 ने मुख्य परीक्षा के दौरान इस तथ्य का उल्लेख किया था कि मृतक अभियुक्त राजेश के पिता की हत्या से संबंधित मामले में एक सह-अभियुक्त था और प्रतिपरीक्षा के दौरान इस तथ्य का प्रकटीकरण हुआ था कि वह भी एक सह-अभियुक्त था । अभि. सा. 1 से प्रतिपरीक्षा के दौरान विनिर्दिष्ट रूप से इस तथ्य के बारे में प्रश्न पूछा गया था कि उसे घटना के दौरान कोई क्षति नहीं पहुंची थी और न ही अभियुक्तों द्वारा उस पर हमला करने या उसकी हत्या करने का कोई प्रयास किया गया था । तथापि, अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया था कि उसके भाई पर "2-1" अभियुक्त व्यक्तियों ने गोली चलाई थी, जबकि कुछ अन्य अभियुक्तों ने हवा में गोलियां चलाई थीं । उस भूमिका के संबंध में, जो अभियुक्त सं. 3 पर अभ्यारोपित की गई थी, अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया था कि उसने रामपाल के साथ हवा में गोलियां चलाई थीं, जबकि राजाराम और राजेश ने उसके भाई पर गोली चलाई थी । अभि. सा. 1 के साक्ष्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के साथ-साथ मुख्य परीक्षा के दौरान यथा वर्णित पक्षकथन पर अभिसाक्ष्य के दौरान तात्विक सुधार करने का प्रयत्न किया गया है । मूल रूप से जो भूमिका उन सभी अभियुक्तों पर अभ्यारोपित की गई है जो देशी पिस्तौलों से लैस थे, वह मृतक पर गोलियां चलाने के बारे में हैं । बाद में, प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 1 ने यह कथन किया था कि जहां तक अभियुक्त सं. 3 का संबंध है, उसने हवा में गोली चलाई थी, जबकि दो अभियुक्तों ने वास्तव में मृतक पर गोली चलाई थी । अभि. सा. 1 के साक्ष्य का विश्लेषण करने पर अभि. सा. 2, जगदीश के साक्ष्य का उल्लेख करना तात्विक होगा । अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान अभियुक्त सं. 3 के बारे में यह उल्लेख किया था कि वह एक देशी बंदूक लहरा रहा था और ज्ञानवती (अभियुक्त सं. 6) ने शिव दयाल के साथ क्रमश: एक चाकू और फरसे से मृतक की गर्दन पर हमला किया था । स्पष्ट रूप से, अभि. सा. 2 एक संयोगी साक्षी है, जिसने घटना को अभिकथित रूप से तब देखा था जब वह गांव

के तालाब से वापस आ रहा था । तथापि, अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया था कि अभि. सा. 1, वेदराम मृतक सुरेन्द्र की चारपाई से लगभग दो हाथ की दूरी पर बैठा हुआ था । उसने यह कथन किया था कि वह यह बताने में असमर्थ है कि मृतक पर गोली पहले किसने चलाई थी और आखिर में गोली किसने चलाई थी । अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह भी स्वीकार किया था कि वह नाम लेकर यह बताने में असमर्थ है कि किसकी गोली अभियुक्त को लगी थी । उसने यह कथन किया था कि अभियुक्त घटना के दौरान मृतक से लगभग 20 गज दूरी पर थे और वह यह बताने में असमर्थ है कि फरसे से कितनी क्षतियां कारित की गई थीं । अभि. सा. 2 यह बताने में भी असमर्थ था कि चाकू से कितनी क्षतियां कारित की गई थीं । अभि. सा. 2 की प्रतिपरीक्षा के इन पहलुओं का एक से अधिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण सरोकार है । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन यह था कि सभी अभियुक्तों ने, जो अभिकथित रूप से देशी पिस्तौलें लहरा रहे थे, मृतक पर गोली चलाई थी । अभियोजन के इस पक्षकथन का अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा में तथा अभि. सा. 2 की प्रतिपरीक्षा में सारभूत रूप से घालमेल किया गया है । महत्वपूर्ण रूप से, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में अग्न्यायुध की केवल एक क्षति उपदर्शित होती है, जो कि अभियोजन के इस पक्षकथन के अनुरूप नहीं है कि सभी अभियुक्तों ने मृतक पर गोली चलाई थी । इसके अलावा, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से मृतक की गर्दन पर एक क्षति उपदर्शित होती है, जो पुन: अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के इस अभिसाक्ष्य से विसंगत है कि शिव दयाल एक फरसे से लैस था और ज्ञानवती (अभियुक्त सं. 6), जो अभिकथित रूप से चाकू से लैस थी, दोनों ने मृतक की गर्दन पर हमला किया था । अभिलेख की इस स्थिति के आधार पर हमारा यह सुविचारित मत है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2, दोनों की घटनास्थल पर मौजूदगी गंभीर रूप से संदेह के घेरे में है । अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2, दोनों के साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए था, किंतु न तो विद्वान् सेशन न्यायाधीश और न ही उच्च न्यायालय द्वारा इस पर विचार किया गया है । उच्च न्यायालय का यह मत था कि प्रतिरक्षा पक्ष

द्वारा जिन विरोधाभासों का उल्लेख किया गया है, वे गौण प्रकृति के हैं । साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष को इस बात पर विचार करते हुए कायम रखने में असमर्थ हैं कि ये विरोधाभास मूलभूत प्रकृति के हैं, जो अभियोजन के पक्षकथन की तह तक जाते हैं । यह सही है कि अभियोजन पक्ष उस प्रत्येक साक्षी की परीक्षा करने के लिए आबद्ध नहीं है, जो अभिकथित रूप से अपराध के स्थान या स्थल पर मौजूद था, तो भी उन तथ्यों के संदर्भ में जो इस न्यायालय के समक्ष प्रकट हुए हैं, चेतराम, जो मृतक का पिता था और अभिकथित रूप से घटनास्थल के अति निकट बैठा हुआ था, परीक्षा कराने में असफलता मायने रखती है । उपरोक्त कारणों से इस न्यायालय का यह मत है कि अभियुक्त-अपीलार्थी सुभाष (अभि. सं. 3) और ज्ञानवती (अभि. सं. 6) संदेह के फायदे के हकदार हैं । तद्नुसार, यह न्यायालय इन अपीलों को मंजूर करता है और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 2008 की दांडिक अपील सं. 5307 में तारीख 11 जनवरी, 2019 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करता है । तद्नुसार, अपीलार्थियों को दोषमुक्त किया जाता है और उन्हें, यदि वे किसी अन्य मामले के संबंध में वांछित न हों, रिहा कर दिया जाएगा । (पैरा 14, 15, 16, 17, 18 और 19)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 158-159.

2008 की दांडिक अपील सं. 5307 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 11 जनवरी, 2019 के निर्णय के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री चंदन मिश्रा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री संजय कुमार त्यागी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चंद्रचूड़ – इजाजत दी गई ।

क. तथ्य

2. ये अपीलें 2008 की दांडिक अपील सं. 5307 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ के तारीख 11 जनवरी, 2019 के

निर्णय से उद्भूत हुई हैं ।

3. उच्च न्यायालय के समक्ष अपील पुलिस थाना, दातागंज, बदायूं में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 148 और धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन रजिस्ट्रीकृत 2002 के अपराध मामला सं. 61 से उद्भूत 2002 के सेशन विचारण सं. 449 में सेशन न्यायाधीश, बदायूं के तारीख 30 जुलाई, 2008 के निर्णय से उद्भूत हुई थी । सेशन न्यायाधीश ने राजाराम, राजेश, सुभाष, रामपाल, शिव दयाल और ज्ञानवती को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और धारा 302/149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया था । उन्हें धारा 302/149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आजीवन कारावास से और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन अपराध के लिए दो वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया था ।

4. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभि. सा. 1, वेदराम द्वारा तारीख 16 फरवरी, 2002 को दर्ज की गई शिकायत के आधार पर 2.30 बजे अपराह्न में रजिस्ट्रीकृत की गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह अभिलिखित किया गया है कि इत्तिलाकर्ता घटना की तारीख को 11.00 बजे पूर्वाह्न में अपने भाई सुरेन्द्र के साथ गांव के कुएं के निकट एक खाट पर बैठा हुआ था और उसका पिता छत पर बैठा हुआ था । उस समय पर, राजाराम और राजेश, जो पिस्तौलों से लैस थे, सुभाष और रामपाल जो देशी पिस्तौलों से लैस थे, शिव दयाल के पास कुल्हाड़ी थी और राजाराम की पत्नी ज्ञानवती के पास एक चाकू था, घटनास्थल पर पहुंचे । राजाराम, राजेश, सुभाष और रामपाल ने अभिकथित रूप से अपनी पिस्तौलों से उसके भाई सुरेन्द्र पर गोली चलाई । शिव दयाल, जो कुल्हाड़ी से लैस था और ज्ञानवती ने अभिकथित रूप से सुरेन्द्र की गर्दन पर हमला किया । इत्तिलाकर्ता का यह कथन है कि वह इसके पश्चात् अपने घर की ओर भागा और अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ अपने पिता को सूचित किया, जो छत पर था । अभियुक्तों को ललकारने पर वे अभिकथित रूप से घटनास्थल से भाग गए । इत्तिलाकर्ता ने यह भी कथन किया कि राजेश के पिता की हत्या में मृतक अभियुक्त था, जिसके लिए न्यायालय के समक्ष विचारण चल रहा था ।

5. विचारण में अभियोजन का पक्षकथन मुख्य रूप से अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य पर आधारित था । मृतक सुरेन्द्र की मरणोत्तर परीक्षा तारीख 17 फरवरी, 2002 को अभि. सा. 4, डा. आर. के. रोहतगी द्वारा की गई थी । अभियोजन पक्ष द्वारा जिन साक्षियों की परीक्षा की गई थी, उनमें वेदराम इत्तिलाकर्ता है, जबकि अभि. सा. 2, जगदीश अभिकथित रूप से एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, जिसने कथित रूप से उस समय घटना को देखा था, जब वह गांव के तालाब से होकर गुजर रहा था ।

6. मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में मृतक को पहुंची निम्नलिखित 9 क्षतियां उपदर्शित की गई हैं :–

"1. दाईं भुजा के पश्च भाग पर कलाई के ठीक ऊपर 5.0 सें. मी. x 2.0 सें. मी. x मांसपेशी की गहराई तक छिन्न घाव ।

2. गर्दन के बाह्य मध्य भाग पर 9.0 सें. मी. x 3.0 सें. मी. x कशेरुकी की गहराई तक छिन्न घाव ।

3. बाईं आस्तीन के पश्च भाग पर कोहनी से 11 सें. मी. नीचे 1.0 सें. मी. x 0.5 सें. मी. x मांसपेशी की गहराई तक छिन्न घाव ।

4. बाईं आस्तीन के पश्च भाग पर कलाई से 6.0 सें. मी. ऊपर 3.0 सें. मी. x 0.5 सें. मी. x मांसपेशी की गहराई तक छिन्न घाव ।

5. होंठ के 1.0 सें. मी. नीचे बाईं तरफ 8.0 सें. मी. x 8.0 सें. मी. x मांसपेशी की गहराई तक छिन्न घाव ।

6. उपरि होंठ पर दाईं तरफ 2.0 सें. मी. x 0.5 सें. मी. x मांसपेशी की गहराई तक विदीर्ण घाव ।

7. छाती पर दाईं तरफ दाएं चूचक से 8.0 सें. मी. ऊपर 4.0 सें. मी. x 3.0 सें. मी. x गुहिका की गहराई तक अग्न्यायुध का प्रविष्ट घाव और चूचक के चारों ओर कालश मौजूद ।

8. खोपड़ी की दाईं तरफ उपरि भाग पर दाएं कान से 10 सें. मी. ऊपर 4.0 सें. मी. x 2.0 सें. मी. x खोपड़ी की गहराई तक विदीर्ण घाव ।

9. चेहरे की बाईं तरफ और कान से 3.0 सें. मी. ऊपर 7.0 सें. मी. x 2.5 सें. मी. का नील ।"

7. सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्तों को मुख्य रूप से अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य के आधार पर दोषी पाया । सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

(i) अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर यह साबित किया गया है कि राजेश के पिता की हत्या में मृतक अभियुक्त था । चूंकि राजेश, सुभाष, राजाराम, रामपाल और ज्ञानवती नातेदार हैं और एक ही परिवार के सदस्य हैं, इसलिए मृतक की हत्या करने का हेतु राजेश के पिता की मृत्यु का बदला लेना था ;

(ii) इस तथ्य से कि अभि. सा. 1 ने अपने भाई को नहीं बचाया था और उसे कोई क्षति नहीं पहुंची थी, यह उपदर्शित नहीं होता है कि वह एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था । एक निहत्थे व्यक्ति के रूप में अभि. सा. 1 के लिए अपने भाई को बचाने का कोई प्रयत्न न करना स्वाभाविक था ; और

(iii) यह चिकित्सा साक्ष्य कि मृतक को अग्न्यायुध की केवल एक क्षति पहुंची थी, अभि. सा. 1 के कथन के अनुरूप है । अभि. सा. 1 ने यह कथन किया था कि राजेश और राजाराम ने मृतक पर गोली चलाई थी, जबकि सुभाष और रामपाल भी गोलियां चला रहे थे । इस प्रकार, यह साबित किया गया है कि गोली अति निकट से चलाई गई थी, किंतु गोली चलने के समय को एक सामान्य व्यक्ति द्वारा अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता है ।

8. सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों और दोषसिद्धि की उच्च न्यायालय द्वारा अपील में तारीख 11 जनवरी, 2019 के अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा पुष्टि की गई है ।

ख. दलीलें

9. हमने अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल श्री चंदन मिश्रा और उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल

श्री संजय कुमार त्यागी को सुना ।

10. इस न्यायालय के समक्ष दो अपीलें सुभाष (अभियुक्त सं. 3) और ज्ञानवती (अभियुक्त सं. 6) द्वारा संस्थित की गई हैं ।

11. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल श्री चंदन मिश्रा ने यह दलील दी कि साक्ष्य में गंभीर विरोधाभास हैं, जिसके कारण अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषमुक्ति आवश्यक हो जाती है । अपीलों के समर्थन में निम्नलिखित दलीलें दी गई हैं :–

(i) अभि. सा. 1, वेदराम अभियुक्त राजेश के पिता की हत्या में अभियुक्त था । अभि. सा. 1 अभिकथित रूप से एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है जो उस समय घटनास्थल पर मौजूद था जब मृतक सुरेन्द्र पर हमला किया गया था । अभि. सा. 1 मृतक के साथ राजेश की पिता की हत्या में अभियुक्त था इसलिए यह असंभव है कि जब अन्य पक्ष के व्यक्तियों के एक बड़े समूह ने अग्न्यायुधों, कुल्हाड़ी और चाकू से सुरेन्द्र पर हमला किया था तो उसे छोड़ दिया जाता ;

(ii) अभि. सा. 1 द्वारा कई तात्विक सुधार किए गए हैं जो उसकी शिकायत, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन किए गए कथन और मुख्य परीक्षा तथा प्रतिपरीक्षा दोनों के दौरान किए गए उसके अभिसाक्ष्य की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाते हैं ;

(iiii) अभि. सा. 2, जगदीश एक संयोगी साक्षी था, जिसने अभिकथित रूप से उस समय घटना को देखा था, जब वह गांव के तालाब से वापस आ रहा था । अभि. सा. 2 के अभिसाक्ष्य से भी यह उपदर्शित होता है कि वह घटना के वास्तविक ब्यौरों से अनभिज्ञ था और वस्तुत: उसने अपने अभिसाक्ष्य के दौरान अपने पक्षकथन में पर्याप्त रूप से सुधार किया था ;

(iv) मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के दौरान जो क्षतियां अभिलिखित की गई हैं, उनसे यह प्रदर्शित होता है कि अग्न्यायुध से पहुंची केवल एक क्षति है और एक क्षति मृतक की गर्दन पर

पहुंची है । अभियोजन का यह पक्षकथन कि शिव दयाल और ज्ञानवती दोनों ने मृतक की गर्दन पर हमला किया था, यह बात उस अकेली क्षति, जो गर्दन पर पहुंची थी, की प्रकृति से झूठी साबित होती है ;

(v) इस तथ्य से कि अग्न्यायुध से पहुंची केवल एक क्षति थी, जो मृतक की मरणोत्तर परीक्षा के दौरान मृतक के शव पर पाई गई थी, अभियोजन का यह पक्षकथन झूठा साबित हो जाता है कि कुल मिलाकर पांच अभियुक्तों ने मृतक पर गोलियां चलाई थीं ;

(vi) इस बारे में गंभीर संदेह है कि अभि. सा. 1 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है भी या नहीं और अभि. सा. 2, जो एक संयोगी साक्षी है, पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए था और इसका एकमात्र कारण यह है कि उसका परिसाक्ष्य गंभीर संदेह के अधीन रहा है ; और

(vii) अभियोजन पक्ष द्वारा मृतक के पिता, चेतराम की परीक्षा न कराना काफी महत्व रखता है, जो अभिकथित रूप से घटनास्थल पर मौजूद था ।

12. दूसरी ओर, उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से हाजिर होने वाले स्थायी काउंसेल श्री संजय कुमार त्यागी ने उन निष्कर्षों पर जोर देने का प्रयत्न किया, जो उच्च न्यायालय द्वारा अपने आक्षेपित निर्णय में अभिलिखित किए गए हैं । काउंसेल ने यह दलील दी कि अभिकथित विरोधाभास, जिनका अपीलार्थियों की ओर से उल्लेख किया गया है, गौण प्रकृति के हैं, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के निर्णय की अभिपुष्टि करते हुए अभिनिर्धारित किया गया है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में यह मत व्यक्त किया था कि :–

(i) अभि. सा. 1 का कथन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुरूप था । अभि. सा. 1 ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख किया था कि सभी चारों अभियुक्तों ने अपने आयुधों से गोली चलाई थी, तथापि, उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया कि केवल राजेश और राजाराम ने मृतक पर गोली चलाई थी, जबकि सुभाष और रामपाल ने हवा में गोली चलाई थी । कुछ गौण विसंगतियां हैं

जिनसे अभि. सा. 1 की विश्वसनियता पर प्रभाव नहीं पड़ सकता है ;

(ii) अभि. सा. 1 ने यह कथन किया था कि अभियुक्तों ने पांच से छह कदम की दूरी से गोली चलाई थी, जबकि अभि. सा. 2 ने यह कथन किया था कि उन्होंने 20 गज की दूरी से गोली चलाई थी । चिकित्सीय साक्ष्य को देखते हुए, अभि. सा. 2 का कथन विश्वसनीय नहीं है, तथापि, अभि. सा. 2 एक अनपढ़ ग्रामीण है जिसकी परीक्षा घटना के चार वर्ष पश्चात् की गई थी । अत: ये विरोधाभास अभि. सा. 2 के अभिसाक्ष्य को पूर्णतया नामंजूर करने के लिए पर्याप्त रूप से तात्विक नहीं हैं ;

(iii) अभि. सा. 1 का यह साक्ष्य कि गोलियां पांच से छह कदम की दूरी से चलाई गई थीं चिकित्सीय साक्ष्य के अनुरूप है क्योंकि अग्न्यायुध की क्षति के चारों ओर कालश थी, जिससे यह उपदर्शित होता है कि क्षति अत्यंत निकट से गोली चलाकर कारित की गई थी ;

(iv) यद्यपि घटनास्थल से कोई आयुध बरामद नहीं हुआ था, तो भी दोषसिद्धि को कायम रखने के लिए यह अत्यावश्यक बात नहीं है ; और

(v) अभियुक्त ज्ञानवती की अपराध में सहभागिता के बारे में केवल इस आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि वह एक महिला होने के कारण अन्य अभियुक्तों के साथ सम्मिलित नहीं हुई होगी । दो साक्षियों का यह कथन कि वह एक चाकू से लैस थी और उसने मृतक की गर्दन पर चाकू घोंपा था, चिकित्सीय साक्ष्य के अनुरूप है ।

13. अब हम परस्पर-विरोधी दलीलों पर विचार करेंगे ।

ग. विश्लेषण

14. अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के अभिसाक्ष्य पर आधारित है । अभि. सा. 1 वेदराम, जो इत्तिलाकर्ता है, ने अपने अभिसाक्ष्य के दौरान यह कथन किया था कि घटना से पूर्व अभियुक्त राजेश के पिता की हत्या का एक मामला चल रहा था । उस

मामले में अभि. सा. 1 की तरह मृतक सुरेन्द्र भी एक अभियुक्त था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में घटना के बारे में वेदराम का वृत्तांत यह है कि घटना की तारीख को लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह मृतक के साथ गांव के कुएं के निकट एक चारपाई पर बैठा हुआ था, तब राजेश, सुभाष और रामपाल ने अपनी देशी पिस्तौलों से गोलियां चलाई और गोलियां उसके भाई सुरेन्द्र को लगी थीं । इसके अतिरिक्त, उसने यह कथन किया था कि शिव दयाल, जो एक फरसा लिए हुए था और ज्ञानवती (राजाराम की पत्नी), जो एक चाकू लिए हुए थी, दोनों ने मृतक की गर्दन पर हमला किया था । मुख्य परीक्षा के दौरान, यह भी कथन किया गया था कि शिव दयाल और ज्ञानवती ने मृतक की गर्दन पर हमला किया था । यद्यपि, अभि. सा. 1 ने मुख्य परीक्षा के दौरान इस तथ्य का उल्लेख किया था कि मृतक अभियुक्त राजेश के पिता की हत्या से संबंधित मामले में एक सह-अभियुक्त था और प्रतिपरीक्षा के दौरान इस तथ्य का प्रकटीकरण हुआ था कि वह भी एक सह-अभियुक्त था । अभि. सा. 1 से प्रतिपरीक्षा के दौरान विनिर्दिष्ट रूप से इस तथ्य के बारे में प्रश्न पूछा गया था कि उसे घटना के दौरान कोई क्षति नहीं पहुंची थी और न ही अभियुक्तों द्वारा उस पर हमला करने या उसकी हत्या करने का कोई प्रयास किया गया था । तथापि, अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया था कि उसके भाई पर "2-1" अभियुक्त व्यक्तियों ने गोली चलाई थी, जबकि कुछ अन्य अभियुक्तों ने हवा में गोलियां चलाई थीं । उस भूमिका के संबंध में, जो अभियुक्त-3 पर अभ्यारोपित की गई थी, अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया था कि उसने रामपाल के साथ हवा में गोलियां चलाई थीं, जबकि राजाराम और राजेश ने उसके भाई पर गोली चलाई थी ।

15. अभि. सा. 1 के साक्ष्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के साथ-साथ मुख्य परीक्षा के दौरान यथा वर्णित पक्षकथन पर अभिसाक्ष्य के दौरान तात्विक सुधार करने का प्रयत्न किया गया है । मूल रूप से जो भूमिका उन सभी अभियुक्तों पर अभ्यारोपित की गई है जो देशी पिस्तौलों से लैस थे, वह मृतक पर गोलियां चलाने के बारे में है । बाद में, प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 1 ने यह कथन किया था कि जहां तक अभियुक्त-3 का संबंध है, उसने हवा में गोली चलाई थी, जबकि दो अभियुक्तों ने वास्तव में मृतक पर

गोली चलाई थी ।

16. अभि. सा. 1 के साक्ष्य का विश्लेषण करने पर अभि. सा. 2, जगदीश के साक्ष्य का उल्लेख करना तात्विक होगा । अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान अभियुक्त-3 के बारे में यह उल्लेख किया था कि वह एक देशी बंदूक लहरा रहा था और ज्ञानवती (अभियुक्त-6) ने शिव दयाल के साथ क्रमश: एक चाकू और फरसे से मृतक की गर्दन पर हमला किया था । स्पष्ट रूप से, अभि. सा. 2 एक संयोगी साक्षी है, जिसने घटना को अभिकथित रूप से तब देखा था जब वह गांव के तालाब से वापस आ रहा था । तथापि, अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया था कि अभि. सा. 1, वेदराम मृतक सुरेन्द्र की चारपाई से लगभग दो हाथ की दूरी पर बैठा हुआ था । उसने यह कथन किया था कि वह यह बताने में असमर्थ है कि मृतक पर गोली पहले किसने चलाई थी और आखिर में गोली किसने चलाई थी । अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह भी स्वीकार किया था कि वह नाम लेकर यह बताने में असमर्थ है कि किसकी गोली अभियुक्त को लगी थी । उसने यह कथन किया था कि अभियुक्त घटना के दौरान मृतक से लगभग 20 गज दूरी पर थे और वह यह बताने में असमर्थ है कि फरसे से कितनी क्षतियां कारित की गई थीं । अभि. सा. 2 यह बताने में भी असमर्थ था कि चाकू से कितनी क्षतियां कारित की गई थीं । अभि. सा. 2 की प्रतिपरीक्षा के इन पहलुओं का एक से अधिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण सरोकार है ।

17. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन यह था कि सभी अभियुक्तों ने, जो अभिकथित रूप से देशी पिस्तौलें लहरा रहे थे, मृतक पर गोली चलाई थी । अभियोजन के इस पक्षकथन का अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा में तथा अभि. सा. 2 की प्रतिपरीक्षा में सारभूत रूप से घालमेल किया गया है । महत्वपूर्ण रूप से, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में अग्न्यायुध की केवल एक क्षति उपदर्शित होती है, जो कि अभियोजन के इस पक्षकथन के अनुरूप नहीं है कि सभी अभियुक्तों ने मृतक पर गोली चलाई थी । इसके अलावा, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से मृतक की गर्दन पर एक क्षति उपदर्शित होती है, जो पुन: अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के इस अभिसाक्ष्य से विसंगत है कि शिव दयाल एक फरसे से लैस था और ज्ञानवती (अभियुक्त-6), जो अभिकथित रूप से चाकू से लैस थी, दोनों ने मृतक की गर्दन पर हमला

किया था ।

18. अभिलेख की इस स्थिति के आधार पर हमारा यह सुविचारित मत है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2, दोनों की घटनास्थल पर मौजूदगी गंभीर रूप से संदेह के घेरे में है । अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2, दोनों के साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए था, किंतु न तो विद्वान् सेशन न्यायाधीश और न ही उच्च न्यायालय द्वारा इस पर विचार किया गया है । उच्च न्यायालय का यह मत था कि प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा जिन विरोधाभासों का उल्लेख किया गया है, वे गौण प्रकृति के हैं । साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष को इस बात पर विचार करते हुए कायम रखने में असमर्थ हैं कि ये विरोधाभास मूलभूत प्रकृति के हैं, जो अभियोजन के पक्षकथन की तह तक जाते हैं । यह सही है कि अभियोजन पक्ष उस प्रत्येक साक्षी की परीक्षा करने के लिए आबद्ध नहीं है, जो अभिकथित रूप से अपराध के स्थान या स्थल पर मौजूद था, तो भी उन तथ्यों के संदर्भ में जो इस न्यायालय के समक्ष प्रकट हुए हैं, चेतराम, जो मृतक का पिता था और अभिकथित रूप से घटनास्थल के अति निकट बैठा हुआ था, परीक्षा कराने में असफलता मायने रखती है ।

19. उपरोक्त कारणों से हमारा यह मत है कि अभियुक्त-अपीलार्थी सुभाष (अभि. सं. 3) और ज्ञानवती (अभि. सं. 6) संदेह के फायदे के हकदार हैं । तद्नुसार, हम इन अपीलों को मंजूर करते हैं और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 2008 की दांडिक अपील सं. 5307 में तारीख 11 जनवरी, 2019 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं । तद्नुसार, अपीलार्थियों को दोषमुक्त किया जाता है और उन्हें, यदि वे किसी अन्य मामले के संबंध में वांछित न हों, रिहा कर दिया जाएगा ।

20. लंबित आवेदनों, यदि कोई हैं, का निपटारा हो जाएगा ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

[2022] 1 उम. नि. प. 252

एन. राजेन्द्रन

बनाम

एस. वल्ली

[2012 की सिविल अपील सं. 3293]

3 फरवरी, 2022

न्यायमूर्ति के. एम. जोसफ और न्यायमूर्ति ऋषिकेश राय

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(ia) – क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद – प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा गर्भाधारण के पश्चात् अपने पैतृक गृह चले जाना – लंबे समय तक ससुराल वापस न आना – अपीलार्थी-पति द्वारा क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल किया जाना – कुटुंब न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना – प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा की गई अपील में उच्च न्यायालय द्वारा डिक्री को उलट दिया जाना – संधार्यता – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर क्रूरता का कोई मामला सिद्ध न होता हो और केवल आपसी नोंक-झोंक का मामला हो, वहां क्रूरता के आधार पर प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को कायम नहीं रखा जा सकता है ।

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 7, 19 और 20 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 12, 29(2) और 29(3) तथा हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 15] – कुटुंब न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील – परिसीमा अवधि – परिसीमा अधिनियम के उपबंधों का लागू होना – चूंकि कुटुंब न्यायालय अधिनियम एक अकेला अधिनियम नहीं है और यह हिंदू विवाह अधिनियम जैसे अधिनियम से पोषित होने के कारण धारा 20 का उपबंध परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के उपबंध को अध्यारोही नहीं करेगा और विवाह के विघटन की डिक्री से व्यथित पक्षकार द्वारा अपील के साथ संलग्न करने के लिए निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति

अभिप्राप्त करने में व्यतीत हुए समय को अपील करने के लिए नियत अवधि से अपवर्जित किया जा सकेगा तथा परिसीमा अधिनियम की धारा 29(3) में "कार्यवाही" शब्द के अर्थांतर्गत केवल मूल कार्यवाहियां आने के कारण यह धारा अपीली कार्यवाहियों पर लागू नहीं होगी ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 142 – उच्चतम न्यायालय की उसके समक्ष लंबित मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए डिक्री या आदेश पारित करने की अधिकारिता – पक्षकारों के बीच विवाह का असुधार्य रूप से टूट जाना – विवाह का विघटन करने के लिए पक्षकारों की सहमति – जहां मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट होता हो कि विवाह के पक्षकारों के बीच सुलह की कोई संभावना नहीं है और उनका पुनर्मिलन होना असंभव है तथा विवाह असुधार्य रूप से टूट गया है, वहां उच्चतम न्यायालय संविधान के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए ऐसे विवाह के विघटन की घोषणा करते हुए विवाह के विघटन की डिक्री पारित कर सकता है और इसके लिए पक्षकारों की सहमति आवश्यक नहीं है ।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह तारीख 29 अगस्त, 1999 को हिंदू रीति-रिवाज और रूढ़ि के अनुसार हुआ था । अपीलार्थी की बहिन और प्रत्यर्थी के भाई का एक-दूसरे के साथ विवाह हुआ था और उनके बीच कतिपय मतभेद थे, जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी की बहिन अपने पैतृक गृह लौट आई थी । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन था कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी को छोड़ कर अपने पैतृक गृह लौट गई थी और वह वापस आई । अपीलार्थी-पति ने प्रत्यर्थी की ओर से क्रूरता करने के आधार पर विवाह के विघटन की ईप्सा करते हुए तारीख 5 मार्च, 2001 को विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल की । कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 23 जुलाई, 2004 की अपनी डिक्री द्वारा अर्जी मंजूर की गई । प्रत्यर्थी द्वारा कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई और यह अपील 9 सितंबर, 2004 को फाइल की गई थी । अपीलार्थी के अनुसार, चूंकि प्रत्यर्थी द्वारा अपील फाइल करने की अवधि का अवसान हो गया था, इसलिए उसने तारीख 23 जुलाई, 2004 की विघटन की डिक्री के आधार पर

तारीख 31 अक्तूबर, 2004 को पुनर्विवाह कर लिया । उसे मामले में मई, 2005 में सूचना तामील की गई थी । वास्तव में, प्रत्यर्थी ने तारीख 27 दिसंबर, 2004 को हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की ईप्सा करते हुए एक अर्जी फाइल की थी और यह अर्जी अभी भी लंबित है । उच्च न्यायालय द्वारा विवाह के विघटन की डिक्री को उलट दिया गया । अपीलार्थी-पति द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की इस दलील का संबंध है कि उच्च न्यायालय ने कुटुंब न्यायालय की डिक्री को उलट कर मामले में गलती की है, इस न्यायालय का यह मत है कि इस दलील में कतई कोई सार नहीं है । निस्संदेह, विवाह को एक अल्पावधि तक बने रहने की बात कहकर अपीलार्थी अपने हिस्से के उस न्यायसम्मत दोष से मुक्त नहीं हो सकता है जो उसके कंधों पर था । विवाह तारीख 29 सितंबर, 1999 को हुआ था । प्रत्यर्थी गर्भवती हो गई थी और वह 18 जनवरी, 2000 को अपने दांपत्य-गृह चली गई थी । बालक का जन्म तारीख 29 अगस्त, 2000 को हुआ था । प्रत्यर्थी के पिता की मृत्यु फरवरी, 2001 में हुई थी । जिस जल्दबाजी में अपीलार्थी ने कार्यवाहियां संस्थित की थीं, वह स्पष्ट रूप से इस बात से सिद्ध होती है कि अपीलार्थी ने कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी तारीख 5 मार्च, 2001 को दी थी । दूसरे शब्दों में, अर्जी विवाह की तारीख से दो वर्ष से कम अवधि के भीतर फाइल की गई थी । निस्संदेह, क्रूरता शारीरिक के साथ-साथ मानसिक भी हो सकती है । यह प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किए जाने वाला विषय है । किंतु इस न्यायालय का यह स्पष्ट मत है कि अपीलार्थी द्वारा जिस मानदंड द्वारा मामला बनाए जाने की ईप्सा की गई थी, वह निराधार है । इस मामले में अभि. सा. 1, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी-साक्षी-1, प्रत्यर्थी का मौखिक परिसाक्ष्य है । इसके अतिरिक्त, प्रदर्श ए-1 और ए-2 से प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभिकथित क्रूरता के बारे में कोई प्रकाश नहीं पड़ता है । उच्च न्यायालय

ने स्पष्ट रूप से यह पाया था कि क्रूरता के अभिकथन का कतई कोई आधार नहीं था, जिसे इस न्यायालय के समक्ष भी दोहराया गया है और वह अभिकथन प्रत्यर्थी और अपीलार्थी की बहिन के बीच तथाकथित तनातनी का संबंध होने के बारे में है । उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह पाया था कि अपीलार्थी की बहिन के विवाह की तारीख, जो अपीलार्थी के विवाह से पूर्व की तारीख है, को ध्यान में रखते हुए यह ऐसा मामला नहीं हो सकता है जहां उन दोनों के बीच तनातनी हो क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रत्यर्थी और अपीलार्थी के बीच विवाह ही नहीं हुआ होता । क्रूरता के आधार के रूप में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच तनातनी के संबंध का मामला बनाया जाना इस न्यायालय की समझ से परे है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल से इस न्यायालय द्वारा यह प्रश्न पूछा गया था कि क्या क्रूरता की कोई अन्य परिस्थिति या दृष्टांत है, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल प्रत्यर्थी द्वारा आत्महत्या की धमकी देने और वापस आने से इनकार करने की बात का उल्लेख करने के अतिरिक्त क्रूरता का कोई अन्य विनिर्दिष्ट दृष्टांत बताने में असमर्थ रहे । प्रत्यर्थी वापस नहीं आ रही थी, इस संबंध में यह पूरी तरह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी गर्भवती होने के कारण उसे अपने पैतृक गृह जाना था । यह स्वाभाविक ही था । गर्भावस्था ठीक-ठाक नहीं थी । यदि पत्नी ने बालक को जन्म देने के पश्चात् कुछ अधिक समय के लिए स्वयं अपने माता-पिता के घर रुकने का विनिश्चय किया था, तो यह बात इस न्यायालय की समझ से परे है कि कैसे ऐसे मामले को न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता था और अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि एक युक्तियुक्त समायावधि की प्रतीक्षा किए बिना ही । अपीलार्थी ने इस बात को भी ध्यान में नहीं रखा था कि वह एक बालक का पिता बना है और न्यायालय में पहुंच गया तथा विवाह-विच्छेद की ईप्सा करते हुए अर्जी फाइल कर दी । यह न्यायालय तारीख 3 फरवरी, 2001 को हुई प्रत्यर्थी के पिता की मृत्यु की बात को भी नहीं भूल सकता है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को इन निष्कर्षों में कि अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी की ओर से क्रूरता करने की बात को सिद्ध नहीं किया गया है, हस्तक्षेप करने के लिए अपीलार्थी द्वारा सिद्ध किया गया कोई आधार दिखाई नहीं देता है । प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल

द्वारा यह उल्लेख किया गया कि आत्महत्या करने की अभिकथित धमकी देने का कोई साक्ष्य नहीं है और यह न्यायालय नहीं समझता कि ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत की गई है, जिस पर इस बात के अलावा विश्वास किया जा सके कि यह एक सामान्य नोंक-झोंक थी, जो अधिकांश विवाहों, भले ही सभी में नहीं, एक सामान्य बात है । ऐसा कुछ नहीं है जो प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता करने के आधार पर विवाह के विघटन की डिक्री को न्यायोचित ठहराने के लिए सिद्ध किया गया हो । (पैरा 8 और 9)

अपीलार्थी द्वारा दिया गया अगला तर्क यह है कि धारा 15 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी ने तारीख 31 अक्तूबर, 2004 को पुनर्विवाह कर लिया था और मामले पर विचार दूसरे विवाह को ध्यान में रखते हुए, जो पूर्णतया विधिपूर्ण है, किया जाना चाहिए और इसका निपटारा किया जाना चाहिए । अपील तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल की गई थी, जो कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 में अनुबंधित 30 दिन की अवधि से परे है । उच्च न्यायालय ने यह अवेक्षा करने के पश्चात् पाया था कि अपील कालावधि के भीतर है चूंकि कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 23 जुलाई, 2004 को डिक्री पारित करने के पश्चात् प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2004 को प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन किया गया था और प्रति अभिप्राप्त करने में व्यतीत हुई अवधि को अपवर्जित किया जाना चाहिए । यह प्रश्न कि क्या परिसीमा अधिनियम विवाह विषयक विधियों के अधीन की जाने वाली अपील को लागू होता है या नहीं, अनिर्णीत विषय नहीं है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल के इन तर्कों पर आते हैं कि धारा 19 सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को अध्यारोही करती है और निर्णय की प्रमाणित प्रति संलग्न करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी, यह न्यायालय इस तर्क को मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा इसी अधिनियम अर्थात् कुटुंब न्यायालय अधिनियम की उक्त धारा 21 के अधीन बनाए गए नियम 52 को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट रूप से अतर्कसंगत पाता है । धारा 19 के सर्वोपरि खंड का वास्तव में एक भिन्न तात्पर्य और व्याप्ति है तथा इसका अर्थ अपील कायम रखने के लिए विधि में यथा विद्यमान सभी

अपेक्षाओं को समाप्त करना नहीं है । समान रूप से, अधिनियम की धारा 19(3) पर आधारित अपीलार्थी की दलील सारहीन है । इससे परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के अर्थांतर्गत एक विशेष विधि गठित की गई है । यह बात अवश्य ध्यान में रखी जानी चाहिए कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम स्वयमेव इस प्रचुर विचार-मनन पर आधारित था कि एक ऐसी विशेषीकृत संस्था स्थापित की जाए जिसका पक्षकारों के बीच सुलह के प्रयास के लिए अधिकाधिक आश्रय लिया जाए । इस बात को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यहां तक कि अधिनियम के प्रख्यापन से, जब तक कोई कुटुंब न्यायालय स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक उन न्यायालयों की अधिकारिता जारी रहेगी, जो पहले से इसके उपबंधों पर कार्यवाही कर रहे थे । कुटुंब न्यायालय की स्थापना से और अधिनियम की धारा 7 के अधीन जिस अधिकारिता का प्रयोग किया जाना है, उसके संबंध में इस न्यायालय का यह मत है कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम का पठन अवश्य सजातीय अधिनियमितियों के साथ किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, कुटुंब न्यायालय अधिनियम एक अकेला अधिनियम नहीं है । यह हिंदू विवाह अधिनियम जैसे अधिनियम से पोषित है । उदाहरण के लिए, इसका कारण यह है कि भारत में कुटुंब न्यायालय स्थापित होने के पश्चात् हिंदू विवाह अधिनियम के अर्थांतर्गत किसी अर्जी पर हिंदू विवाह अधिनियम के अधीन यथा-उपबंधित आधारों पर कुटुंब न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा । वास्तव में, कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के अनुशीलन मात्र से यह दर्शित होता है कि इसमें वादों और कार्यवाहियों के बारे में कहा गया है । इसलिए कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 को परिसीमा अधिनियम की धारा 29 के साथ पढ़ने पर भी इस न्यायालय के इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि धारा 29(3) के अर्थांतर्गत "कार्यवाहियां" शब्द मूल कार्यवाहियों तक सीमित रहना चाहिए । यह न्यायालय धारा 20 पर आधारित दलील में भी कोई गुणागुण नहीं पाता है । धारा 20 कुटुंब न्यायालय अधिनियम को, ऐसी किसी बात के होते हुए भी जो किसी अन्य अधिनियम के असंगत है, अध्यारोही प्रभाव देती है । यह सही है कि इस धारा का आशय इसे अन्य उपबंधों के प्रतिकूल होते हुए भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव देना है ।

किंतु धारा 20 को लागू करने के लिए और परिसीमा अधिनियम की धारा 12 को नकारने के लिए, अपीलार्थी को प्रथमत: परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) की प्रयोज्यता का विलोपन करने में सफल होना चाहिए । जब एक बार धारा 29(2) लागू हो जाती है, तो धारा 19 में यथा अनुध्यात परिसीमा की विशेष अवधि का उपबंध करते हुए कुटुंब न्यायालय अधिनियम, किंतु परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 के उपबंधों को इसके अनुक्रम में लाते हुए, एक विशेष अधिनियमिति होगी । परिसीमा अधिनियम की धारा 12 विधि सम्मत रूप से भावी अपीलार्थी के लिए उपलब्ध है । यह बात भी न्याय के हित में सहायक होगी । वास्तव में, यह बात समझ से परे है कि कैसे विधि एक ओर तो, नियमों के नियम 52 के माध्यम से यह आदिष्ट करती है कि अपील के साथ एक प्रमाणित प्रति अवश्य संलग्न की जानी चाहिए, दूसरी ओर, विवाह के विघटन की घोषणा करने वाला विनिश्चय किसी मुकदमेबाज को निष्क्रिय रख सकता है जब उसे प्रमाणित प्रति के बिना अपील फाइल करने का अधिकार नहीं है, और इसके बावजूद मूल न्यायालय के समक्ष सफल पक्षकार परिसीमा अधिनियम के अधीन समाप्त होने वाली अवधि से पूर्व पुन:विवाह करने के लिए स्वतंत्र है । इस प्रकार, धारा 12 में, इसे परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) और कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के साथ पढ़ने पर, कुछ भी विसंगत नहीं है । अत: इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी की इस दलील में कतई कोई गुणागुण नहीं है कि धारा 20 के उपबंध परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के उपबंधों को अभिभावी करेंगे और तद्द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील समय के परे फाइल की गई बन जाती है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल, श्री के. एस. महादेवन द्वारा दिए गए इस तर्क में भी कतई कोई गुणागुण नहीं है कि प्रत्यर्थी ने अपील तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल की थी और इसलिए यह ऐसी अपील नहीं थी जो हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 के अर्थांतर्गत प्रस्तुत की गई थी । वास्तव में, परिसीमा अधिनियम की धारा 3 में अपील के संदर्भ में "की गई" (प्रेफर) शब्द प्रयुक्त किया गया है । निस्संदेह, धारा 15 में "प्रस्तुत की गई" (प्रेजंटिड) शब्द का प्रयोग किया गया है । धारा 15 का जो आशय है, वह उस कार्यवाही को चुनौती देने

के लिए असफल पक्षकार के अधिकार पर एक समय-सीमा लगाना है, जिसके द्वारा विवाह को विघटित घोषित किया गया है । अत: विधान-मंडल का आशय विघटन के लिए डिक्री को वहां प्रभावशील बनाना था, यदि असफल पक्षकार कालावधि के भीतर अपील न्यायालय में समावेदन नहीं करता है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल का यह तर्क स्पष्ट रूप से निराधार है कि न केवल यह आवश्यक है कि अपीलार्थी अपील फाइल करे (फाइल दि अपील), या अपील करे (प्रेफर अपील) या अपील प्रस्तुत करे (प्रेजेंट अपील), अपितु उसे यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अपील उच्च न्यायालय के न्यायिक पक्ष की ओर से आई हो । इसलिए हमारा यह निष्कर्ष है कि अपील तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल करने के कारण इसे अधिनियम की धारा 15 के अर्थांतर्गत प्रस्तुत किया गया समझा जाना चाहिए । इस चर्चा का निष्कर्ष यह है कि अपीलार्थी ने निष्कर्षों को गुणागुण के आधार पर उलटने के लिए मामले को सिद्ध नहीं किया है । समान रूप से, चूंकि अपीलार्थी इस न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने के लिए प्रेरित करने में असफल रहा है कि अपील कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 में अनुबंधित अवधि के भीतर फाइल नहीं की गई थी या यह कि अपील धारा 15 में उपबंधित अवधि के दौरान समय के भीतर प्रस्तुत नहीं की गई थी, इसलिए दूसरा विवाह, जिसका अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिया गया है, स्पष्ट रूप से हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 के आदेश के उल्लंघन में किया गया था और इस न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय अपने निष्कर्षों में पूर्णत: सही था । (पैरा 10, 19, 23, 25, 26 और 27)

तथापि, दुर्भाग्यवश, प्रश्न यह रह जाता है कि क्या इस मामले के तथ्यों में इस न्यायालय द्वारा की गई जांच का यहां अंत हो जाना चाहिए । पक्षकार निर्विवाद रूप से तारीख 18 जनवरी, 2000 से, दूसरे शब्दों में, 22 वर्षों से अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं । क्या इस न्यायालय को आक्षेपित निर्णय की अभिपुष्टि करके, जिसे इस न्यायालय ने आलोचना रहित पाया है, शांत हो जाना चाहिए ? क्या इस न्यायालय को अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल के इस अभिवाक् पर ध्यान

देना चाहिए कि निर्णय में हस्तक्षेप करने से इनकार करने से ऐसी स्थिति पैदा नहीं हो जाएगी, जहां पक्षकार कभी भी पति और पत्नी के रूप में सहवास करने में समर्थ नहीं होंगे और इतना ही नहीं, तृतीय पक्षकारों ने दूसरी पत्नी और उसे तारीख 25 फरवरी, 2004 को जन्मे पुत्र के रूप में इस परिदृश्य में अपनी उपसंजाति की है तथा विवाह अभी भी अटूट बना हुआ है । अपीलार्थी का दूसरे विवाह से, जो असंदिग्ध रूप से धारा 15 का अतिक्रमण करते हुए किया गया है, जन्मा एक पुत्र है । प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह उल्लेख किया गया कि अपीलार्थी के दूसरे विवाह से पुत्र का जन्म, यहां तक कि कुटुंब न्यायालय द्वारा विघटन की घोषणा करने से पूर्व, हो गया था । संविधान का अनुच्छेद 142, निस्संदेह, इस न्यायालय को ऐसे आदेश पारित करने की शक्ति देता है जिससे पक्षकारों का पूर्ण न्याय हो जाए । मस्तिष्क में जो बात आती है, वह विवाह का असुधार्य रूप से टूट जाने की धारणा है । निस्संदेह, यद्यपि इस विषय में विधि में परिवर्तन करने की सिफारिश करते हुए विधि आयोग की रिपोर्टें रही हैं, तो भी आज तक कानून में विवाह के असुधार्य रूप से टूट जाने का एक आधार के रूप में उपबंध नहीं है । तथापि, इस न्यायालय ने अनेक अवसरों पर अनुच्छेद 142 के आधार पर अपनी शक्ति का प्रयोग किया है और विवाह असुधार्य रूप से टूट जाने के आधार पर विवाह का विघटन प्रदान किया है । इस विषय में, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह उल्लेख किया कि यह अनुच्छेद 142 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने का मामला नहीं है । उन्होंने यह निवेदन संपूर्ण अवधि के दौरान अपीलार्थी के आचरण को इस न्यायालय को स्मरण कराते हुए किया । उन्होंने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी पूर्णत: निर्दोष है । वह वापस आने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक थी । उच्च न्यायालय द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, उनकी पुष्टि की गई है, इसलिए इस न्यायालय के लिए अनुच्छेद 142 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने का कोई अवसर उद्भूत नहीं होता है । यह न्यायालय इस दलील को यह उपदर्शित करने के लिए एक प्रारंभिक टिप्पणी के रूप में अंकित करता है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां दोनों पक्षकार विवाह असुधार्य रूप से टूट जाने के आधार पर इसके विघटन के लिए राजी हों । किंतु फिर यह प्रश्न उठता है कि क्या विवाह

असुधार्य रूप से टूट जाने के आधार पर विवाह के विघटन के आदेश के लिए पक्षकारों की सहमति आवश्यक है । यह भी अनिर्णीत विषय नहीं है । न्यायालय यह उल्लेख कर सकता है कि इस न्यायालय ने अनेक विनिश्चयों में इस पहलू पर विचार-विमर्श किया है । यह पाए जाने पर कि किसी विवाह को विघटित घोषित करने के लिए पक्षकारों की सम्मति आवश्यक नहीं है, यह न्यायालय उन तथ्यों की भी अनदेखी नहीं कर सकता है, जो वास्तव में विद्यमान हैं । यहां एक ऐसा विवाह है, जो तारीख 31 अक्तूबर, 2004 को हुआ था । उक्त विवाह से जन्मा एक बालक भी है । निस्संदेह धारा 15 का उल्लंघन होने के कारण यह एक संपन्न कार्य बन जाता है किंतु साथ ही साथ इस न्यायालय को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी द्वारा पति और पत्नी के रूप में एक-साथ रहने की कोई संभावना दिखाई नहीं पड़ती है । उस विवाह में जैसा भी जीवन था, वह समय बीतने के साथ, नए पक्षकारों के आ जाने से और पक्षकारों के बीच कोई मेल-मिलाप न होने से समाप्त हो गया है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच पुनर्मिलन की थोड़ी सी भी संभावना नहीं है और उसके लिए जो कारण हैं, यद्यपि वे पूर्णतया अपीलार्थी के कृत्यों की वजह से हैं और जिनके लिए प्रत्यर्थी को दोष नहीं दिया जा सकता है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का अंत हो गया है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी द्वारा एक-साथ किसी प्रकार का कोई युक्तियुक्त संबंध बनाने की संभावना नहीं है क्योंकि पक्षकारों के बीच बंधन असुधार्य रूप से टूट चुका है और इस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय का यह विचार है कि यह न्याय के हित में और पक्षकारों के प्रति पूर्ण न्याय करने के लिए होगा कि इस न्यायालय को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का विघटन करते हुए एक आदेश पारित करना चाहिए । तद्नुसार, जबकि यह न्यायालय उच्च न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि करता है और प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता करने के आधार पर विघटन की डिक्री प्रदान करने के लिए इनकार करता है, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह को विघटित करने की घोषणा करता है । (पैरा 28, 29, 32 और 34)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	(2021) एस. सी. सी. आनलाइन एस. सी. 702 : **शिवशंकरन** बनाम **सांथीमीनल** ;	31
[2020]	(2020) 14 एस. सी. सी. 657 : **मुनीष कक्कड़** बनाम **निधि कक्कड़** ;	30
[2019]	(2019) 9 एस. सी. सी. 409 : **आर. श्रीनिवास कुमार** बनाम **शमेथा** ;	29
[1990]	[1990] 1 उम. नि. प. 203 = (1989) 2 एस. सी. सी. 613 : **लता कामत** बनाम **विलास** ;	5
[1988]	ए. आई. आर. 1988 कलकत्ता 28 : **श्रीमती सिप्रा डे** बनाम **अजित कुमार डे** ;	20
[1985]	ए. आई. आर. 1985 केरल 220 : **कुन्नारथ यसोदा** बनाम **मानथनाथ नारायणन** ;	21
[1981]	1981 के. एल. टी. 602 : **कुट्टीमालु** बनाम **सुब्रमण्यन** ।	21

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 3293.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. एस. महादेवन

प्रत्यर्थी की ओर से श्री गौतम नारायण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. एम. जोसफ ने दिया ।

न्या. जोसफ – आक्षेपित निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह के विघटन की डिक्री को उलट दिया है, जो हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(ik) के

अधीन पारित की गई है ।

2. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री के. एस. महादेवन और प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री गौतम नारायण को सुना ।

3. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह तारीख 29 अगस्त, 1999 को हिंदू रीति-रिवाज और रूढ़ि के अनुसार हुआ था । अपीलार्थी के अनुसार, उसकी बहिन और प्रत्यर्थी के भाई, जिनका एक दूसरे के साथ विवाह हुआ था, के बीच कतिपय मतभेद थे, जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी की बहिन अपने पैतृक गृह लौट आई थी । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी तारीख 18 जनवरी, 2000 को अपीलार्थी को छोड़ कर चली गई थी और अपने पैतृक गृह लौट गई थी । वह वापस घर नहीं आई । वह क्रूरता करने की दोषी थी और तद्नुसार विवाह के विघटन की ईप्सा करते हुए तारीख 5 मार्च, 2001 को विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल की गई । कुटुंब न्यायालय ने तारीख 23 जुलाई, 2004 की अपनी डिक्री द्वारा अर्जी मंजूर की । प्रत्यर्थी द्वारा कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई और यह अपील 9 सितंबर, 2004 को फाइल की गई थी । अपीलार्थी के अनुसार, चूंकि प्रत्यर्थी द्वारा अपील फाइल करने की अवधि का अवसान हो गया था, इसलिए उसने तारीख 23 जुलाई, 2004 की विघटन की डिक्री के आधार पर तारीख 31 अक्तूबर, 2004 को पुनर्विवाह कर लिया । उसे मामले में मई, 2005 में सूचना तामील की गई थी । वास्तव में, प्रत्यर्थी ने तारीख 27 दिसंबर, 2004 को हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की ईप्सा करते हुए एक अर्जी फाइल की थी और यह अर्जी अभी भी लंबित है ।

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल, श्री के. एस. महादेवन ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने कुटुंब न्यायालय के निर्णय को उलटकर स्पष्ट रूप से गलती की है । उन्होंने यह दलील दी कि यह मामला प्रत्यर्थी द्वारा की गई वैवाहिक क्रूरता का है । विचारण न्यायालय ने साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् विवाह का विघटन प्रदान

करने की बात को न्यायोचित ठहराते हुए निष्कर्ष निकाला था । यह बताया गया कि प्रत्यर्थी और अपीलार्थी की बहिन के बीच तनातनी के संबंध थे । यहां यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि अपीलार्थी की बहिन का प्रत्यर्थी के भाई के साथ विवाह तारीख 24 मई, 1999 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच तारीख 29 अगस्त, 1999 को विवाह होने से पूर्व हुआ था । यह उल्लेख किया गया है कि साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया था कि प्रत्यर्थी और अपीलार्थी की बहिन के बीच तनातनी का अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संबंध पर एक प्रभावशाली असर पड़ा था । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी आत्महत्या करने की धमकी देती थी । इतना ही नहीं, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि यद्यपि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी से वापस आने के लिए अनुरोध किया था, किंतु उसने यह कहते हुए इनकार कर दिया था कि इस तथ्य को देखते हुए कि वह एक बालक को जन्म देने के लिए गई है, इसलिए उसे और समय चाहिए । उसने पांच माह के लिए अनुरोध किया था । वास्तव में, तारीख 3 फरवरी, 2001 को प्रत्यर्थी के पिता का स्वर्गवास हो गया था । यह भी दलील दी गई कि प्रत्यर्थी का व्यवहार इस स्वीकृत तथ्य से प्रतिबिंबित होता है कि प्रत्यर्थी ने दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की ईप्सा करते हुए कोई अर्जी फाइल नहीं की थी । यदि वह असलियत में वापस आने और अपीलार्थी के साथ रहने की इच्छुक थी, तो उसे ऐसा करना चाहिए था । आगे यह भी उल्लेख किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी और उसकी ननद के बीच कोई तनातनी का संबंध न होने के बारे में निकाला गया निष्कर्ष असंधार्य है । उन्होंने इस बाबत आक्षेपित निर्णय में के विरोधाभासों का उल्लेख किया । उन्होंने इस निष्कर्ष की कि ऐसी कोई तनातनी नहीं थी, इस निष्कर्ष के साथ तुलना की कि परिवारों के बीच तनातनी थी । प्रत्यर्थी कभी भी अपीलार्थी के साथ रहने की इच्छुक नहीं थी । उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी सदैव पुनर्मिलन के लिए तैयार और इच्छुक थी, तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष असंधार्य होने के कारण इसकी आलोचना की गई । इस बाबत यह उल्लेख किया गया कि अभिवचनों में वापस आने का आशय प्रतिबिंबित नहीं होता था और इस बात को पहली

बार केवल प्रत्यर्थी के साक्ष्य में अभिव्यक्त किया गया था ।

5. यह भी दलील दी गई कि प्रत्यर्थी अपने साथ सारे जेवरात और सामान ले गई थी, यह एक ऐसा तथ्य है, जिसका कुटुंब न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालने के लिए अवलंब लिया गया था कि प्रत्यर्थी की अपीलार्थी के साथ रहने की रुचि नहीं थी, उच्च न्यायालय द्वारा इसके प्रभाव के बारे में निकाले गए इस निष्कर्ष को कि यह काल्पनिक बात है, इसके समर्थन में कोई साक्ष्य न होने के कारण उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को कायम नहीं रखा जा सकता है । यह दलील दी गई कि दो मत संभव होने के कारण, उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय के मत को नहीं उलटना चाहिए था । आगे यह भी दलील दी गई कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी तारीख 18 जनवरी, 2000 से अलग-अलग रह रहे हैं । बाईस वर्ष व्यतीत हो गए हैं । एक लंबा और लगातार पृथक्करण रहा है, इसलिए यह विवाह आज एक विधिक धारणा मात्र रह गया है । संपूर्ण आधार-तत्व लुप्त हो जाने के कारण यह बंधन सुधार से परे है, विवाह की पवित्रता समाप्त हो गई है । अत: यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय के निर्णय को अवश्य उलटा जाना चाहिए । आगे यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी द्वारा धारा 19 के अधीन फाइल की गई अपील स्पष्ट रूप से समय से परे थी । यह उल्लेख किया गया कि जब उच्च न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर कर दिया था कि डिक्री की अपील करने के लिए 90 दिन की अवधि उपलब्ध है, तो उसने यह निष्कर्ष निकालकर गलती की थी कि अपील परिसीमा अधिनियम की धारा 22 के उपबंधों के आधार पर समय के भीतर फाइल की गई थी । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यह निष्कर्ष परिसीमा अधिनियम की धारा 29(3) के प्रतिकूल है । उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 स्वयमेव एक संहिता है और यह बात धारा 20 से स्पष्ट होती है, जिसमें यह घोषणा की गई है कि धारा 20 किसी अन्य विधि में कोई बात विसंगत होते हुए भी प्रभावी होगी । विद्वान् काउंसेल ने इस बाबत अति महत्वपूर्ण रूप से यह भी दलील दी कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के प्रभावी रूप से प्रवर्तन के लिए आड़े नहीं आएंगे । दूसरे

शब्दों में, उन्होंने यह दलील दी कि ऐसे मामले में जो सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन आता है, यह आज्ञापक है कि अपील के साथ एक प्रमाणित प्रति संलग्न की जानी चाहिए किंतु जब धारा 19 (1) का उचित रूप से मूल्यांकन किया जाए, तो इस अपेक्षा को हटा लिया गया समझा जाना चाहिए । समान रूप से, उन्होंने धारा 19 (1) का यह दलील देने के लिए उल्लेख किया कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम के उपबंध, किसी ऐसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे जो किसी अन्य विधि के प्रतिकूल है । इस प्रकार, भावी अपीलार्थी द्वारा धारा 19 में उपबंधित 30 दिनों की अवधि का अवश्य पालन किया जाना चाहिए । इसलिए ऐसा अपीलार्थी परिसीमा अधिनियम की सहायता से किसी अवधि का अपवर्जन कराने के लिए हकदार नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम की धारा 29 (2) का गलत रूप से अवलंब लिया था । इस विधि का संबंध विवाह और विवाह-विच्छेद से होने के कारण यह मामला पूरी तरह से धारा 29 (3) के अंतर्गत आता है । इस बाबत, उन्होंने यह दलील दी कि धारा 19 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष अपील एक वाद नहीं है, इसलिए यह निश्चित रूप से धारा 29 (3) के अर्थांतर्गत एक कार्यवाही होगी । उन्होंने यह दलील दी कि **लता कामत** बनाम **विलास**[1] वाले मामले में संप्रकाशित इस न्यायालय का निर्णय एक ऐसा मामला था जो हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 28 के अधीन विचार किए जाने के लिए था । कुटुंब न्यायालय अधिनियम के उपबंधों, विशिष्ट रूप से, धारा 19 और 20 में उद्घोषित फर्क को ध्यान में रखते हुए, धारा 29 (3) में आने वाले 'कार्यवाही शब्द' में वह अपील भी सम्मिलित है, जो धारा 19 के अधीन की जाती है । उन्होंने आगे यह दलील दी कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 के अधीन अपील को कालावधि में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है । विद्वान् काउंसेल श्री के. एस. महादेवन के अनुसार, "प्रस्तुत की गई हो" शब्द का निर्वचन एक पांडित्यपूर्ण रीति में किया जाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और इसे न्यायालय की फाइलों

---

[1] [1990] 1 उम. नि. प. 203 = (1989) 2 एस. सी. सी. 613.

में अपील को घुसेड़ देना मात्र नहीं समझा जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, धारा 15 के अर्थांतर्गत अपील को "प्रस्तुत किया गया" केवल तब समझा जाएगा जब इसे न केवल फाइल किया गया हो अपितु इसे आगे बढ़ाया गया हो और न्यायिक पक्ष की ओर से इसे न्यायालय के समक्ष लाया गया हो । यद्यपि अपील तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल की गई थी, यह उल्लेख किया गया कि डिक्री पर रोक लगाने के लिए आवेदन पर पहले ही तारीख 30 अगस्त, 2004 को हस्ताक्षर किए गए थे । अपील तैयार रखी गई थी और इसे जानबूझकर तुरंत फाइल नहीं किया गया था । जिस क्षण प्रत्यर्थी को यह पता चला कि अपीलार्थी का तारीख 30 जनवरी, 2004 को पुनर्विवाह हो गया है, उसने तारीख 1 नवंबर, 2004 को रोकादेश के लिए आवेदन फाइल कर दिया । इसलिए वह जानबूझकर यह देखना चाहती थी कि क्या अपीलार्थी पुनर्विवाह करेगा । उसके पश्चात्, उसने तारीख 18 नवंबर, 2004 को रोकादेश के लिए आवेदन फाइल किया और उक्त तारीख को रोकादेश अभिप्राप्त कर लिया । अत: यह दलील दी गई कि यह अवधारण करना असंभव है कि डिक्री को सहन करने वाले पक्षकार द्वारा संभवत: कब अपील फाइल की जाएगी । प्रत्यर्थी के इस आचरण को देखते हुए यह दलील दी गई कि उसे कोई अनुतोष प्रदान न किया जाए ।

6. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री गौतम नारायण ने यह उल्लेख किया कि अपीलार्थी की ओर से विवाह का विघटन करने की ईप्सा करने के लिए किसी सुसंगत समय पर किसी प्रकार का कोई मामला नहीं बनता था । विवाह के पश्चात्, यह देखकर कि वह गर्भवती है और जैसा कि स्वाभाविक है, वह अपने पैतृक गृह गई थी । गर्भावस्था एक ठीक-ठाक मामला नहीं था । वास्तव में यह जटिल था । उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था । उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों ने उसे अपने पैतृक गृह में रुकने के लिए मजबूर किया था और इस बात का प्रत्यर्थी की ओर से वैवाहिक बंधन की अपनी आबद्धताओं को पूरा करने में अभिरुचि की कमी से कोई सरोकार नहीं था । यह उल्लेख किया गया कि जिन अभिकथनों का कुटुंब न्यायालय द्वारा समर्थन किया गया था, वे स्पष्ट रूप से उस स्तर के नहीं हैं

जिनसे विधि-निर्माताओं द्वारा अनुध्यात क्रूरता का आधार लागू होता हो । विवाह के विघटन की डिक्री प्रदान करने के लिए कुटुंब न्यायालय के पास किसी प्रकार का कोई आधार विद्यमान नहीं था । यह उल्लेख किया गया कि उच्च न्यायालय ने परिस्थितियों के प्रतिनिर्देश करके मामले पर विस्तारपूर्वक चर्चा की थी और ठीक ही इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि कतई कोई क्रूरता नहीं है । प्रत्यर्थी पूर्णतया निर्दोष है । वह एक अध्यापिका है । इस विवाह से एक पुत्र हुआ है । यह उल्लेख किया गया कि अपीलार्थी ने स्वयं अपने पुत्र में कतई कोई रुचि नहीं ली थी । उन्होंने यह उल्लेख किया कि जहां तक परिसीमा अधिनियम की धारा 29 (3) की प्रयोज्यता से संबंधित प्रश्न का संबंध है, कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19, धारा 29 (2) के अर्थांतर्गत एक विशेष उपबंध है और इसलिए धारा 29 (2) ही है, जो लागू होगी । उन्होंने यह उल्लेख किया कि धारा 29 (3) में आने वाले 'कार्यवाही' शब्द को वाद सदृश कार्यवाहियों तक सीमित किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ पक्षकारों द्वारा लाई गई मूल कार्यवाहियां हैं न कि मामले में की गई अपील ।

7. उन्होंने यह भी दलील दी कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 में अपील "की गई हो" शब्द का चाहा गया निर्वचन किए जाने के बारे में दी गई दलील में कतई कोई गुणागुण नहीं है । उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि न्यायालय द्वारा तथ्यों और प्रत्यर्थी, जो निर्दोष है, की उस दुर्दशा पर विचार किया जाए जो उसके पति द्वारा विवाह करने में अपवित्र जल्दबाजी दिखाकर की थी ।

8. जहां तक अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की इस दलील का संबंध है कि उच्च न्यायालय ने कुटुंब न्यायालय की डिक्री को उलट कर मामले में गलती की है, हमारा यह मत है कि इस दलील में कतई कोई सार नहीं है । निस्संदेह, विवाह को एक अल्पावधि तक बने रहने की बात कहकर अपीलार्थी अपने हिस्से के उस न्यायसम्मत दोष से मुक्त नहीं हो सकता है जो उसके कंधों पर था । विवाह तारीख 29 सितंबर, 1999 को हुआ था । प्रत्यर्थी गर्भवती हो गई थी और वह 18 जनवरी, 2000 को अपने दांपत्य-गृह चली गई थी । बालक का जन्म तारीख 29 अगस्त, 2000 को हुआ था । प्रत्यर्थी के पिता की मृत्यु

फरवरी, 2001 में हुई थी ।

9. जिस जल्दबाजी में अपीलार्थी ने कार्यवाहियां संस्थित की थीं, वह स्पष्ट रूप से इस बात से सिद्ध होती है कि अपीलार्थी ने कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी तारीख 5 मार्च, 2001 को दी थी । दूसरे शब्दों में, अर्जी विवाह की तारीख से दो वर्ष से कम अवधि के भीतर फाइल की गई थी । निस्संदेह, क्रूरता शारीरिक के साथ-साथ मानसिक भी हो सकती है । यह प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किए जाने वाला विषय है । किंतु हमारा यह स्पष्ट मत है कि अपीलार्थी द्वारा किसी मानदंड द्वारा जो मामला बनाए जाने की ईप्सा की गई थी, वह निराधार है । इस मामले में जो साक्ष्य है वह अपीलार्थी, अभि. सा. 1, और प्रत्यर्थी, प्रत्यर्थी-साक्षी-1 का मौखिक परिसाक्ष्य है । इसके अतिरिक्त, प्रदर्श ए-1 और ए-2 से प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभिकथित क्रूरता के बारे में कोई प्रकाश नहीं पड़ता है । उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह पाया था कि क्रूरता के अभिकथन का कतई कोई आधार नहीं था, जिसे हमारे समक्ष भी दोहराया गया है और वह प्रत्यर्थी और अपीलार्थी की बहिन के बीच तथाकथित तनातनी के संबंध के बारे में है । उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह पाया था कि अपीलार्थी की बहिन के विवाह की तारीख को ध्यान में रखते हुए, जो अपीलार्थी के विवाह से पूर्व की तारीख है, यह ऐसा मामला नहीं हो सकता है जहां उन दोनों के बीच तनातनी हो क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रत्यर्थी और अपीलार्थी के बीच विवाह ही नहीं हुआ होता । क्रूरता के आधार के रूप में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच तनातनी के संबंध का मामला बनाया जाना हमारी समझ से परे है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल से हमारे द्वारा यह प्रश्न पूछा गया था कि क्या क्रूरता की कोई अन्य परिस्थिति या दृष्टांत है, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल प्रत्यर्थी द्वारा आत्महत्या की धमकी देने और वापस आने से इनकार करने की बात का उल्लेख करने के अतिरिक्त क्रूरता का कोई अन्य विनिर्दिष्ट दृष्टांत बताने में असमर्थ रहे । प्रत्यर्थी वापस नहीं आ रही थी, इस संबंध में यह पूरी तरह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी गर्भवती होने के कारण उसे अपने पैतृक गृह जाना था । यह स्वाभाविक ही था । जैसा कि उल्लेख किया गया है, गर्भावस्था ठीक-ठाक नहीं थी । यदि पत्नी ने बालक को जन्म देने के पश्चात् कुछ

अधिक समय के लिए स्वयं अपने माता-पिता के घर रुकने का विनिश्चय किया था, तो यह हमारी समझ से परे है कि कैसे ऐसे मामले को न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता था और अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि एक युक्तियुक्त समायावधि की प्रतीक्षा किए बिना ही । अपीलार्थी ने इस बात को भी ध्यान में नहीं रखा था कि वह एक बालक का पिता बना है और न्यायालय में पहुंच गया तथा विवाह-विच्छेद की ईप्सा करते हुए अर्जी फाइल कर दी । हम तारीख 3 फरवरी, 2001 को हुई प्रत्यर्थी के पिता की मृत्यु की बात को भी नहीं भूल सकते हैं । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हमें इन निष्कर्षों में कि अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी की ओर से क्रूरता करने की बात को सिद्ध नहीं किया गया है, हस्तक्षेप करने के लिए अपीलार्थी द्वारा सिद्ध किया गया कोई आधार दिखाई नहीं देता है । प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह उल्लेख किया गया कि आत्महत्या करने की अभिकथित धमकी देने का कोई साक्ष्य नहीं है और हम नहीं समझते कि ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत की गई है, जिस पर इस बात के अलावा विश्वास किया जा सके कि यह एक सामान्य नोंक-झोंक थी, जो अधिकांश विवाहों, भले ही सभी में नहीं, एक सामान्य बात है । ऐसा कुछ नहीं है जो प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता करने के आधार पर विवाह के विघटन की डिक्री को न्यायोचित ठहराने के लिए सिद्ध किया गया हो ।

10. अपीलार्थी द्वारा दिया गया अगला तर्क यह है कि धारा 15 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए और अपीलार्थी ने तारीख 31 अक्तूबर, 2004 को पुनर्विवाह कर लिया था, मामले पर दूसरे विवाह को ध्यान में रखते हुए, जो पूर्णतया विधिपूर्ण है, विचार किया जाना चाहिए और इसका निपटारा किया जाना चाहिए । अपील तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल की गई थी, जो कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 में अनुबंधित 30 दिन की अवधि से परे है । उच्च न्यायालय ने यह अवेक्षा करने के पश्चात् पाया था कि अपील कालावधि के भीतर है, चूंकि कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 23 जुलाई, 2004 को डिक्री पारित करने के पश्चात् प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2004 को प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन किया गया था और प्रति अभिप्राप्त करने में व्यतीत हुई अवधि को अपवर्जित किया जाना चाहिए । जब प्रमाणित प्रति तारीख

19 अगस्त, 2004 को उपलब्ध कराई गई थी, तो प्रत्यर्थी ने, अपीलार्थी के अनुसार, आवेदन पर रोकादेश के लिए तारीख 30 अगस्त, 2004 को हस्ताक्षर किए थे । अपील तारीख 1 सितंबर, 2004 को तैयार की गई थी । अपील केवल तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल की गई थी । इसलिए यदि प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन करने और अभिप्राप्त करने में व्यतीत हुई अवधि को अपवर्जित किया जाए, तो अपील पूरी तरह से कालावधि के भीतर है, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा पाया गया था । यदि अपीलार्थी की यह दलील न्यायोचित पाई जाती है कि न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के अधीन आश्रय लेने की ईप्सा करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता था, तो अपील कालावधि से परे होगी और अपीलार्थी द्वारा किया गया दूसरा विवाह पूर्णतया विधिपूर्ण होगा ।

11. अपीलार्थी की दलील का मूल्यांकन करने के लिए हमें हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 15 का उल्लेख करना होगा, यह धारा निम्नलिखित है :–

> "जबकि विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार ही न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो, तो अपील करने के समय का कोई अपील उपस्थापित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की गई हो किंतु खारिज कर दी गई हो, तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुन: विवाह करना विधिपूर्ण होगा ।"

12. अब कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 का उल्लेख किया जाना चाहिए, जो निम्नलिखित है :–

> "(1) उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किसी कुटुंब न्यायालय के प्रत्येक निर्णय या आदेश की, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, अपील उच्च न्यायालय में

तथ्यों और विधि, दोनों के संबंध में होगी ।

(2) कुटुंब न्यायालय द्वारा पक्षकारों की सहमति से पारित किसी डिक्री या आदेश की या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पारित किसी आदेश की कोई अपील नहीं होगी :

परंतु इस उपधारा की कोई बात कुटुंब न्यायालय (संशोधन) अधिनियम, 1991 के प्रारंभ के पूर्व किसी उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित किसी अपील या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पारित किसी आदेश को लागू नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, किसी कुटुंब न्यायालय के निर्णय या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर की जाएगी ।

(4) उच्च न्यायालय, स्वप्रेरणा से या अन्यथा, ऐसी किसी कार्यवाही का, जिसमें उसकी अधिकारिता के भीतर स्थित कुटुंब न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन कोई आदेश पारित किया है, अभिलेख, उस आदेश को, जो अंतर्वर्ती आदेश न हो, तथ्यतः, वैधता या औचित्य के बारे में और ऐसी कार्यवाही की नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है ।

(5) जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय, किसी कुटुंब न्यायालय के किसी निर्णय, आदेश या डिक्री की किसी न्यायालय में कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा ।"

13. समान रूप से, हमें कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 का भी उल्लेख करना चाहिए, जो निम्नलिखित है :–

"इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से भिन्न किसी विधि के आधार पर प्रभाव

रखने वाली किसी लिखत में तत्संगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे ।"

14. अन्य उपबंध, जिसकी हमें अवश्य अवेक्षा करनी चाहिए, वह परिसीमा अधिनियम की धारा 29 है, जो निम्नलिखित है :–

"29. व्यावृत्तियां – (1) इस अधिनियम की कोई भी बात भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) की धारा 25 पर प्रभाव नहीं डालेगी ।

(2) जहां कि कोई विशेष या स्थानीय विधि किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए कोई ऐसा परिसीमा काल विहित करती है जो अनुसूची द्वारा विहित परिसीमा काल से भिन्न है वहां धारा 3 के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो वह परिसीमा काल अनुसूची द्वारा विहित परिसीमा काल हो ; तथा किसी वाद, अपील या आवेदन के निमित्त किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा विहित परिसीमा काल का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए धारा 4 से धारा 24 तक के (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी आती हैं) उपबंध केवल वहीं तक और उसी विस्तार तक लागू होंगे जहां तक और जिस विस्तार तक वे उस विशेष या स्थानीय विधि द्वारा अभिव्यक्त तौर पर अपवर्जित न हों ।

(3) विवाह और विवाह-विच्छेद विषयक किसी तत्समय प्रवृत्त विधि में अन्यथा उपबंधित के सिवाय इस अधिनियम की कोई भी बात ऐसी किसी विधि के अधीन के किसी वाद या अन्य कार्यवाही को लागू नहीं होगी ।

(4) धाराएं 25 और 26 तथा धारा 2 में की "सुखाचार" की परिभाषा, उन राज्यक्षेत्रों में उद्भूत मामलों को लागू नहीं होगी जिन पर भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 (1882 का 5) का तत्समय विस्तार हो ।"

15. एक ओर, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल का यह पक्षकथन है कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम के उपबंधों अर्थात् धारा 19 को ध्यान में रखते हुए, धारा 29 (3) स्पष्ट रूप से लागू होगी और

इसलिए परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होगा । चूंकि परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होगा, इसलिए प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन करने और उसे अभिप्राप्त करने में व्यतीत अवधि को प्रत्यर्थी द्वारा परिसीमा की अवधि की संगणना करते हुए अपवर्जित नहीं किया जा सकता था ।

16. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वह धारा 29(2) है, जो लागू होगी । इसके साथ एक अन्य तर्क, जिस पर हमें अवश्य ध्यान देना चाहिए, यह है कि अपील हालांकि तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल की गई थी, तो भी इसे तारीख 9 सितंबर, 2004 को किया गया नहीं समझा जा सकता है ।

17. परिसीमा अधिनियम, 1908 के अधीन इसके पूर्ववर्ती अवतार में धारा 29(3) निम्नलिखित थी :–

> "इस अधिनियम की कोई बात भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम (1869 का 4) के अधीन वादों पर लागू नहीं होगी ।"

18. इसका यह अर्थ है कि इसके लिए परिसीमा की कोई अवधि नहीं है और परिसीमा अधिनियम भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए वाद को लागू नहीं होती है । परिसीमा अधिनियम, 1908 पर विधि आयोग की तीसरी रिपोर्ट में इसमें परिवर्तन की आवश्यकता के बारे में यह कहा गया था :–

> "पैरा 60. उपधारा (3) इस अधिनियम को विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन वादों पर अप्रयोज्य बनाती है । विवाह और विवाह-विच्छेद के संबंध में पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम और विशेष विवाह अधिनियम जैसे अन्य अधिनियम हैं । विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन कार्यवाहियों को अपवर्जित करने वाले कारण इन अन्य अधिनियमों के अधीन कार्यवाहियों को समान रूप से लागू होते हैं । हम यह सिफारिश करते हैं कि उपधारा का विस्तार वैवाहिक मामलों से संबंधित सभी अधिनियमों को सम्मिलित करने के लिए किया जाए । जो अधिनियम सम्मिलित किए जाएं, उन्हें इस धारा के संशोधन का

प्रारूप तैयार करते समय विनिर्दिष्ट किया जाए ।"

19. यह प्रश्न कि क्या परिसीमा अधिनियम विवाह विषयक विधियों के अधीन की जाने वाली अपील को लागू होता है या नहीं, अनिर्णीत विषय नहीं है । निस्संदेह, हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 28 के तत्वाधान में, **लता कामत** (उपर्युक्त) वाले मामले में संप्रकाशित इस न्यायालय के विनिश्चय में हमें केवल निम्नलिखित पैरा का उल्लेख करने की आवश्यकता है :–

> "12. परिसीमा अधिनियम के अंतर्गत अनुसूची हिंदू विवाह अधिनियम के अधीन अपील के लिए उपबंध नहीं करती अपितु इसका उपबंध केवल हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 28 के खंड (4) में किया गया है । इस प्रकार धारा 28 की उपधारा खंड (4) में उपबंधित परिसीमा अधिनियम की अनुसूची से भिन्न है । धारा 29 के खंड (2) के अनुसार धारा 4 से 24 में अंतर्विष्ट उपबंध तब तक लागू होंगे जब तक कि वे अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित न हों । यह स्पष्ट है कि अधिनियम के उपबंध परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 के उपबंधों के प्रवर्तन को अपवर्जित नहीं करते और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि ये उपबंध लागू नहीं होंगे । अत: यह स्पष्ट है कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 28 के अधीन अपील के संबंध में धारा 12 की उपधारा (2) में अंतर्विष्ट उपबंध लागू होंगे । अत: अपील की काल-सीमा संगणित करते समय निर्णय की प्रतियां अभिप्राप्त करने के लिए अपेक्षित समय अपवर्जित करना होगा । चंद्रदेव चड्ढ़ा वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है :–
>
> > 'हिंदू विवाह अधिनियम एक विशेष विधि है । इस 'विशेष विधि' में अपील के लिए परिसीमा काल विहित किया गया है, यह बात स्पष्ट है । परिसीमा अवधि 30 दिन की है । यह अवधि परिसीमा अधिनियम, 1963 की प्रथम अनुसूची में विहित अवधि से भिन्न है । किंतु जब हम प्रथम अनुसूची को देखते हैं तो हमें पता चलता है कि प्रथम अनुसूची में हिंदू विवाह अधिनियम के अधीन पारित डिक्री या

> आदेश के विरुद्ध अपील के लिए कोई उपबंध नहीं है । अब यह अभिनिर्धारित किया गया है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 29 (2) में यथा अधिकथित 'ऐसा परिसीमा काल विहित करती है जो प्रथम अनुसूची द्वारा विहित परिसीमाकाल से भिन्न है' की कसौटी की ऐसे मामले में भी पूर्ति हो जाती है जिसमें विशेष विधि और परिसीमा अधिनियम के बीच विवाद परिसीमा अधिनियम के अधीन विशिष्ट कार्यवाही के लिए परिसीमा अवधि का उपबंध न करने के कारण उठा हो । देखिए केनरा बैंक, मुंबई **बनाम** वार्डन इंश्योरेंस कंपनी लि. (ए. आई. आर. 1953 मुंबई 35) जिसका उच्चतम न्यायालय द्वारा विद्याचरण शुक्ल **बनाम** खूबचंद वाले मामले में अनुमोदन किया गया था ।

यदि एक बार कसौटी की पूर्ति हो जाती है तो परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 3, 4 से लेकर 24 के उपबंध तुरंत विशेष विधि को लागू हो जाते हैं । परिणामस्वरूप, हिंदू विवाह अधिनियम के अधीन पारित डिक्री या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई करने वाले न्यायालय की परिसीमा अधिनियम की धारा 3 के अधीन अपील को खारिज करने की उस दशा में शक्ति होगी यदि वह विशेष विधि में उसके लिए विहित 30 दिन के परिसीमा काल के पश्चात् फाइल की गई थी । इसी प्रकार, धारा 5 के अधीन पर्याप्त हेतुक होने पर उसे विलंब को माफ करने की शक्ति होगी । उसी प्रकार धारा 12 (2) के अधीन उस डिक्री या आदेश की, जिसके विरुद्ध अपील की जा रही है, प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करने में लगे समय को अपवर्जित किया जाएगा । यदि ऐसा है तो परिसीमा अधिनियम की धारा 12 (2) लागू होगी और तीनों अपीलों में के अपीलार्थी अपने द्वारा डिक्री तथा आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करने में लगे समय को अपवर्जित कराने के हकदार होंगे । अत: ये अपीलें समय के भीतर फाइल की गई हैं ।

श्रीमती सिप्रा डे वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा और कांतिबाई वाले मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा भी अपनाया गया दृष्टिकोण इसी प्रकार का है । अत: यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी की

ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा परिसीमा अधिनियम के आधार पर दी गई दलील भी सारहीन है ।'

20. हम यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि इस विषय पर उच्च न्यायालय द्वारा अधिक विस्तृत रूप से विचार किया गया था । दिल्ली उच्च न्यायालय के विनिश्चय के अतिरिक्त इस न्यायालय ने भी कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय पर विचार किया था, जिसमें इस विषय पर विस्तृत रूप से विचार किया गया था और यह विनिश्चय **श्रीमती सिप्रा डे** बनाम **अजित कुमार डे**[1] वाले मामले में संप्रकाशित है । उक्त मामले में, न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 29(3) के उपबंधों में जो परिवर्तन लाया गया था, उसका मूल आधार दिया है । विधान-मंडल विवाह विषयक मामलों में 'कार्यवाहियां' शब्द के विषय में परिसीमा अधिनियम का संरक्षण, जैसा कि वह था, उन व्यक्तियों से भिन्न व्यक्तियों तक बढ़ाना चाहता था जो परिसीमा अधिनियम, 1908 में की धारा 29(3) के उपबंधों द्वारा कवर होते थे । अधिनियम, 1908 की धारा 29(3) के अधीन संरक्षण उन व्यक्तियों को उपलब्ध था, जो भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम द्वारा शासित होते हैं । तर्काधार यह प्रतीत होता है कि दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन, विवाह-विच्छेद, संरक्षकता जैसे विवाह विषयक मामले स्वाभाविक रूप से ही ऐसे मामले हैं जिनके लिए परिसीमा की एक अवधि नियत करना समुचित नहीं हो सकेगा । पक्षकारों के संदर्भ में यह न्याय के हित में नहीं होगा और इसलिए समाज के हित में भी नहीं होगा । यही वह सिद्धांत है, जिसे ऐसे मामलों तक विस्तृत किया गया था, उदाहरण के लिए, विशेष विवाह अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के लिए, जहां पक्षकार विशेष विवाह अधिनियम द्वारा शासित होते हैं और पारसी विवाह अधिनियम तथा कोई अन्य विधि जिसका संबंध विवाह विषयक मामलों से है । किंतु जब मूल कार्यवाहियों से अपील का उपबंध करने की बात आती है, तो यह एक पूर्णतया भिन्न प्रतिपादना है । यह पक्षकारों के साथ-साथ बृहत समाज के हित में है कि परिसीमा की एक अवधि निश्चित की जाए जिसके भीतर न्यायालय के निर्णय को न्यायिक

---

[1] ए. आई. आर. 1988 कलकत्ता 28.

अधिक्रम वाले न्यायालय में प्रश्नगत किया जा सके । एक निश्चितता का होना आवश्यक है और समय के विषय में निश्चितता होनी चाहिए और इस विषय में यह मत व्यक्त किया गया है कि हमें धारा 29(3) में "कार्यवाही" शब्द के अर्थ को अवश्य समझना चाहिए ।

21. हमें यह अनुध्यात करने में कोई कठिनाई नहीं है कि धारा 29 (3) में उपबंधित संदर्भ को छोड़कर और इसे एक भिन्न प्रतिस्थापन में रखने से "कार्यवाही" शब्द में अपील सम्मिलित हो सकेगी । तथापि, धारा 29(3) के संदर्भ में और विधान के इतिहास को ध्यान में रखते हुए, यह पूरी तरह स्पष्ट है कि विधान-मंडल का आशय कार्यवाहियों को एक अर्जी के माध्यम से मूल न्यायालय के समक्ष ले जाने का था, उदाहरण के लिए, जैसा कि हिंदू विवाह अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में अनुध्यात है । इसके अतिरिक्त, हम यह भी उल्लेख करना चाहेंगे कि वास्तव में जैसा कि उपरोक्त निर्णय में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही उल्लेख किया गया था कि परिसीमा अधिनियम की धारा 3, 4, 5, 12, 13, 29, 30 और 31 में 'अपील' अभिव्यक्ति को अभिव्यक्त रूप से प्रयुक्त किया गया है । अधिक प्रासंगिक बात जो स्वयमेव धारा 29 में है, जो हमारे समक्ष संविवाद के केंद्र में है, यह है कि एक ओर धारा 29(2) में 'अपील' शब्द को अभिव्यक्त रूप से प्रयुक्त किया गया है, यद्यपि जब यह धारा 29(3) में आता है, किंतु विधान-मंडल ने सावधानीपूर्वक 'कार्यवाहियां' शब्द का चयन किया है । कंपनी के संबंध में विचार करते हुए, "कार्यवाहियां" शब्द अर्थात् वाद को रखे जाने से निश्चित रूप से यह उपदर्शित होता है कि विधान-मंडल के मस्तिष्क में मूल कार्यवाहियां थीं न कि अपीली कार्यवाहियां । वास्तव में, केरल उच्च न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **कुट्टीमालु** बनाम **सुब्रमण्यन**[1] वाले मामले में संप्रकाशित निर्णय में इस विषय पर विचार किया था और उनके दृष्टिकोण को केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा **कुन्नारथ यसोदा** बनाम **मानथनाथ नारायणन**[2] वाले

---

[1] 1981 के. एल. टी. 602.

[2] ए. आई. आर. 1985 केरल 220.

मामले में अनुमोदन किया गया था । केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय से निम्नलिखित पैराओं का उल्लेख करना सुसंगत है :–

> "16. दूसरी दलील परिसीमा अधिनियम की धारा 29(3) में आने वाली 'अन्य कार्यवाही' अभिव्यक्ति के अर्थ के संबंध में है । जैसा कि कुट्टीमालु **बनाम** सुब्रमण्यन (1981) के. एल. टी. 602 = ए. आई. आर. 1981 एन. ओ. सी. 221) वाले मामले में चंद्रदेव **बनाम** रानी बाला (ए. आई. आर. 1979 दिल्ली 22) वाले मामले का अनुसरण करते हुए ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 29(3) के अधीन कानूनी वर्जन वादों और अन्य कार्यवाहियों तक सीमित है जो दोनों ही मूल प्रकृति के हैं, न कि अपीलों पर जो एक सुभिन्न और अलग प्रवर्ग से संबंध रखती हैं । हम न्यायमूर्ति बालगंगाधरन नायर के तर्काधार और निष्कर्ष से पूर्णतया सहमत हैं ।
>
> 17. इसलिए इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि विवाह-विच्छेद के लिए डिक्री के विरुद्ध विवाह अधिनियम के अधीन अपील डिक्री की तारीख से 30 दिनों के भीतर फाइल की जानी चाहिए, चाहे प्रमाणित प्रति अभिप्राप्त की गई है या नहीं और भले ही अपील न्यायालय डिक्री पारित करने के पश्चात् या आदेश करने के पश्चात् बंद हो जाता है और उससे 30 दिनों तक इस प्रकार बंद रहता है । हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 केवल यह घोषणा करती है कि विवाह के किसी भी पक्षकार के लिए कतिपय परिस्थितियों के अधीन पुन: विवाह करना विधिपूर्ण होगा । इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि पुनर्विवाह का अधिकार विवाह-विच्छेद की डिक्री की तारीख से 30 दिनों के अवसाद के पश्चात् स्वत: उत्पन्न नहीं हो जाती है । यदि अपील प्रस्तुत की जाती है, तो उस व्यक्ति को इसे खारिज किए जाने तक प्रतीक्षा करनी होगी । अपील का अधिकार है, तो प्रमाणित प्रति अभिप्राप्त करने के लिए अपेक्षित समय पर विचार करते हुए अपील फाइल

करने की कालावधि अपील फाइल किए बिना पर्यावसित हो जानी चाहिए । अपील फाइल करने की कालावधि का तब पर्यावसान नहीं होता है यदि अपील फाइल करने में हुए विलंब के लिए माफी दे दी जाती है । साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 10 के अधीन कालावधि की गणना के अधीन जब न्यायालय या कार्यालय बंद रहता है तो 30 दिनों के परे कालावधि का विस्तार किया जाता है । इस प्रकार, धारा 15 से, देखते ही, यह उपदर्शित होता है कि यह विधायी आशय नहीं है कि पुनर्विवाह करने का अधिकार विवाह-विच्छेद की डिक्री के ठीक 30 दिनों के पश्चात् उद्भूत हो जाता है ।

18. हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 23(4) का अवलंब लिया गया है, जिसमें यह उपबंधित है कि –

> 'प्रत्येक मामले में जहां विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह का विघटन किया जाता है, वहां डिक्री पारित करने वाला न्यायालय प्रत्येक पक्षकार को इसकी एक प्रति मुफ्त में देगा ।'

यह दलील दी गई थी कि आवेदक नि:शुल्क एक प्रति का हकदार था और इसलिए प्रमाणित प्रति अभिप्राप्त करने में लिया गया समय अपवर्जित नहीं किया जा सकता है । हमारा ध्यान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 363(1) की ओर भी आकर्षित किया गया, जिसके अधीन –

> 'जब अभियुक्त को कारावास का दंडादेश दिया जाता है, तो निर्णय सुनाए जाने के पश्चात् निर्णय की एक प्रति उसे नि:शुल्क तुरंत दी जाएगी ।'

हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 में आवेदक को केवल एक प्रति नि:शुल्क अभिप्राप्त करने के लिए समर्थ बनाया गया है ; किंतु कानूनी रूप से वह समयावधि विहित नहीं की गई है, जिसके दौरान प्रति दी जानी चाहिए । धारा 23(4) अपीलार्थी की इस दलील को अग्रसर नहीं करती है कि प्रमाणित प्रति अभिप्राप्त करने

के लिए अपेक्षित समयावधि को अपवर्जित नहीं किया जा सकता है ।"

22. उपरोक्त पैरा 18 की अंतर्वस्तुओं को अपनाते हुए, हम यह पाते हैं कि यह पुन: एक ऐसी परिस्थिति है, जो अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल, श्री के. एस. महादेवन के इस तर्क से पर्याप्त रूप से संबंधित है कि प्रमाणित प्रति का होना आवश्यक नहीं है । जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है, कुटुंब न्यायालय अधिनियम के अधीन की गई अपेक्षा के अनुसार नि:शुल्क एक प्रति दी जा सकती है किंतु यह बात यह अभिनिर्धारित करने से एक अलग बात है कि अपील एक प्रमाणित प्रति के बिना की जा सकती है । इस विषय में, हमारे मत की पुष्टि उस नियम से होती है जो कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 21 के अधीन बनाया गया है । मद्रास उच्च न्यायालय ने कुटुंब न्यायालय (प्रक्रिया) नियम, 1996 का नियम 52 विरचित किया है, जो निम्न प्रकार से है :–

> "निर्णय या आदेश की प्रति जो अपील के साथ फाइल की जानी चाहिए – अधिनियम की धारा 19(1) के अधीन प्रत्येक अपील के साथ निर्णय की एक प्रति संलग्न की जाएगी, जिसे उस न्यायालय द्वारा सत्य प्रति होना प्रमाणित किया गया हो जिसके द्वारा निर्णय पारित किया गया है ।"

23. यह बात अपीलार्थी की इस दलील को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त है कि अपील 30 दिन के भीतर कायम की जा सकती है, भले ही इसके साथ प्रमाणित प्रति संलग्न न हो । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल के इन तर्कों पर आते हैं कि धारा 19 सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को अध्यारोही करती है और निर्णय की प्रमाणित प्रति संलग्न करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी, हम इस तर्क को मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा इसी अधिनियम अर्थात् कुटुंब न्यायालय अधिनियम की उक्त धारा 21 के अधीन बनाए गए नियम 52 को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट रूप से अतर्कसंगत पाते हैं । धारा 19 के सर्वोपरि खंड का वास्तव में एक भिन्न तात्पर्य और व्याप्ति है तथा इसका अर्थ अपील कायम

रखने के लिए विधि में यथा विद्यमान सभी अपेक्षाओं को समाप्त करना नहीं है ।

24. समान रूप से, अधिनियम की धारा 19(3) पर आधारित अपीलार्थी की दलील सारहीन है । इससे परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के अर्थांतर्गत एक विशेष विधि गठित की गई है । यह बात अवश्य ध्यान में रखी जानी चाहिए कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम स्वयमेव इस प्रचूर विचार-मनन पर आधारित था कि एक ऐसी विशेषीकृत संस्था स्थापित की जाए जिसका पक्षकारों के बीच सुलह के प्रयास के लिए अधिकाधिक आश्रय लिया जाए । इस बात को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यहां तक कि अधिनियम के प्रख्यापन से, जब तक कोई कुटुंब न्यायालय स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक उन न्यायालयों की अधिकारिता जारी रहेगी, जो पहले से इसके उपबंधों पर कार्यवाही कर रहे थे । कुटुंब न्यायालय की स्थापना से और अधिनियम की धारा 7 के अधीन जिस अधिकारिता का प्रयोग किया जाना है, उसके संबंध में इस न्यायालय का यह मत है कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम का पठन अवश्य सजातीय अधिनियमितियों के साथ किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, कुटुंब न्यायालय अधिनियम एक अकेला अधिनियम नहीं है । यह हिंदू विवाह अधिनियम जैसे अधिनियम से पोषित है । उदाहरण के लिए, इसका कारण यह है कि भारत में कुटुंब न्यायालय स्थापित होने के पश्चात् हिंदू विवाह अधिनियम के अर्थांतर्गत किसी अर्जी पर हिंदू विवाह अधिनियम के अधीन यथा-उपबंधित आधारों पर कुटुंब न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा । वास्तव में, कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के अनुशीलन मात्र से यह दर्शित होता है कि इसमें वादों और कार्यवाहियों के बारे में कहा गया है । इसलिए कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 को परिसीमा अधिनियम की धारा 29 के साथ पढ़ने पर भी हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि धारा 29(3) के अर्थांतर्गत 'कार्यवाहियां' शब्द मूल कार्यवाहियों तक सीमित रहना चाहिए ।

25. हम धारा 20 पर आधारित दलील में भी कोई गुणागुण नहीं

पाते हैं । धारा 20 कुटुंब न्यायालय अधिनियम को, ऐसी किसी बात के होते हुए भी जो किसी अन्य अधिनियम के असंगत है, अध्यारोही प्रभाव देती है । यह सही है कि इस धारा का आशय इसे अन्य उपबंधों के प्रतिकूल होते हुए भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव देना है । किंतु धारा 20 को लागू करने के लिए, और परिसीमा अधिनियम की धारा 12 को नकारने के लिए, अपीलार्थी को प्रथमत: परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) की प्रयोज्यता का विलोपन करने में सफल होना चाहिए । जब एक बार धारा 29(2) लागू हो जाती है, तो धारा 19 में यथा अनुध्यात परिसीमा की विशेष अवधि का उपबंध करते हुए कुटुंब न्यायालय अधिनियम, किंतु परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 के उपबंधों को इसके अनुक्रम में लाते हुए, एक विशेष अधिनियमिति होगी । परिसीमा अधिनियम की धारा 12 विधि सम्मत रूप से भावी अपीलार्थी के लिए उपलब्ध है । यह बात भी न्याय के हित में सहायक होगी । वास्तव में, यह बात समझ से परे है कि कैसे विधि एक ओर तो, नियमों के नियम 52 के माध्यम से यह आदिष्ट करती है कि अपील के साथ एक प्रमाणित प्रति अवश्य संलग्न की जानी चाहिए, दूसरी ओर, विवाह के विघटन की घोषणा करने वाला विनिश्चय किसी मुकदमेबाज को निष्क्रिय रख सकता है जब उसे प्रमाणित प्रति के बिना अपील फाइल करने का अधिकार नहीं है, और इसके बावजूद मूल न्यायालय के समक्ष सफल पक्षकार परिसीमा अधिनियम के अधीन समाप्त होने वाली अवधि से पूर्व पुन:विवाह करने के लिए स्वतंत्र है ।

26. इस प्रकार, धारा 12 में, इसे परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) और कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के साथ पढ़ने पर, कुछ भी विसंगत नहीं है । अत: हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी की इस दलील में कतई कोई गुणागुण नहीं है कि धारा 20 के उपबंध परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के उपबंधों को अभिभावी करेंगे और तद्द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील समय के परे फाइल की गई बन जाती है ।

27. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल, श्री के. एस. महादेवन

द्वारा दिए गए इस तर्क में भी कतई कोई गुणागुण नहीं है कि प्रत्यर्थी ने अपील तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल की थी और इसलिए यह ऐसी अपील नहीं थी जो हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 के अर्थांतर्गत प्रस्तुत की गई थी । वास्तव में, परिसीमा अधिनियम की धारा 3 में अपील के संदर्भ में "की गई" (प्रेफर) शब्द प्रयुक्त किया गया है । निस्संदेह, धारा 15 में "प्रस्तुत की गई" (प्रेजंटिड) शब्द का प्रयोग किया गया है । धारा 15 का जो आशय है, वह उस कार्यवाही को चुनौती देने के लिए असफल पक्षकार के अधिकार पर एक समय-सीमा लगाना है, जिसके द्वारा विवाह को विघटित घोषित किया गया है । **लता कामत** (उपर्युक्त) वाले मामले में हमने यह पाया है कि इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि धारा 15 में "विघटित" शब्द का प्रयोग किया गया है, तो भी इसके संबंध में यह निर्वचन किया गया है कि यह उन मामलों में भी लागू होगी, जहां विवाह को न्याय के हितों को ध्यान में रखते हुए अकृत और शून्य उद्घोषित किया जाता है । अत: विधान-मंडल का आशय विघटन के लिए डिक्री को वहां प्रभावशील बनाना था, यदि असफल पक्षकार कालावधि के भीतर अपील न्यायालय में समावेदन नहीं करता है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल का यह तर्क स्पष्ट रूप से निराधार है कि न केवल यह आवश्यक है कि अपीलार्थी अपील फाइल करे (फाइल दि अपील), या अपील करे (प्रेफर अपील) या अपील प्रस्तुत करे (प्रेजेंट अपील), अपितु उसे यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अपील उच्च न्यायालय के न्यायिक पक्ष की ओर से आई हो । इसलिए हमारा यह निष्कर्ष है कि अपील तारीख 9 सितंबर, 2004 को फाइल करने के कारण इसे अधिनियम की धारा 15 के अर्थांतर्गत प्रस्तुत किया गया समझा जाना चाहिए । इस चर्चा का निष्कर्ष यह है कि अपीलार्थी ने निष्कर्षों को गुणागुण के आधार पर उलटने के लिए मामले को सिद्ध नहीं किया है । समान रूप से, चूंकि अपीलार्थी हमें यह अभिनिर्धारित करने के लिए प्रेरित करने में असफल रहा है कि अपील कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 में अनुबंधित अवधि के भीतर फाइल नहीं की गई थी या यह कि अपील धारा 15 में उपबंधित अवधि के दौरान समय के भीतर प्रस्तुत नहीं की गई थी, इसलिए दूसरा विवाह,

जिसका अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिया गया है, स्पष्ट रूप से हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 15 के आदेश के उल्लंघन में किया गया था और हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय अपने निष्कर्षों में पूर्णत: सही था ।

28. तथापि, दुर्भाग्यवश, प्रश्न यह रह जाता है कि क्या इस मामले के तथ्यों में इस न्यायालय द्वारा की गई जांच का यहां अंत हो जाना चाहिए । पक्षकार निर्विवाद रूप से तारीख 18 जनवरी, 2000 से, दूसरे शब्दों में, 22 वर्षों से अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं । क्या हमें आक्षेपित निर्णय की अभिपुष्टि करके, जिसे हमने आलोचना रहित पाया है, शांत हो जाना चाहिए ? क्या हमें अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल के इस अभिवाक् पर ध्यान देना चाहिए कि निर्णय में हस्तक्षेप करने से इनकार करने से ऐसी स्थिति पैदा नहीं हो जाएगी, जहां पक्षकार कभी भी पति और पत्नी के रूप में सहवास करने में समर्थ नहीं होंगे और इतना ही नहीं, तृतीय पक्षकारों ने दूसरी पत्नी और उसे तारीख 25 फरवरी, 2004 को जन्मे पुत्र के रूप में इस परिदृश्य में अपनी उपसंजाति की है तथा विवाह अभी भी अटूट बना हुआ है । अपीलार्थी का दूसरे विवाह से, जो असंदिग्ध रूप से धारा 15 का अतिक्रमण करते हुए किया गया है, जन्मा एक पुत्र है । प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह उल्लेख किया गया कि अपीलार्थी के दूसरे विवाह से पुत्र का जन्म, यहां तक कि कुटुंब न्यायालय द्वारा विघटन की घोषणा करने से पूर्व, हो गया था ।

29. संविधान का अनुच्छेद 142, निस्संदेह, इस न्यायालय को ऐसे आदेश पारित करने की शक्ति देता है जिससे पक्षकारों का पूर्ण न्याय हो जाए । मस्तिष्क में जो बात आती है, वह विवाह का असुधार्य रूप से टूट जाने की धारणा है । निस्संदेह, यद्यपि इस विषय में विधि में परिवर्तन करने की सिफारिश करते हुए विधि आयोग की रिपोर्टें रही हैं, तो भी आज तक कानून में विवाह के असुधार्य रूप से टूट जाने का एक आधार के रूप में उपबंध नहीं है । तथापि, इस न्यायालय ने अनेक अवसरों पर अनुच्छेद 142 के आधार पर अपनी शक्ति का प्रयोग किया

है और विवाह असुधार्य रूप से टूट जाने के आधार पर विवाह का विघटन प्रदान किया है । इस विषय में, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह उल्लेख किया कि यह अनुच्छेद 142 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने का मामला नहीं है । उन्होंने यह निवेदन संपूर्ण अवधि के दौरान अपीलार्थी के आचरण को हमें स्मरण कराते हुए किया । उन्होंने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी पूर्णत: निर्दोष है । वह वापस आने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक थी । उच्च न्यायालय द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, उनकी पुष्टि की गई है, इसलिए इस न्यायालय के लिए अनुच्छेद 142 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने का कोई अवसर उद्भूत नहीं होता है । हम इस दलील को यह उपदर्शित करने के लिए एक प्रारंभिक टिप्पणी के रूप में अंकित करते हैं कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां दोनों पक्षकार विवाह असुधार्य रूप से टूट जाने के आधार पर इसके विघटन के लिए राजी हों । किंतु फिर यह प्रश्न उठता है कि क्या विवाह असुधार्य रूप से टूट जाने के आधार पर विवाह के विघटन के आदेश के लिए पक्षकारों की सहमति आवश्यक है । यह भी अनिर्णीत विषय नहीं है । हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि इस न्यायालय ने अनेक विनिश्चयों में इस पहलू पर विचार-विमर्श किया है । **आर. श्रीनिवास कुमार** बनाम **शमेथा**[1] वाले मामले में संप्रकाशित निर्णय निम्न प्रकार से है :–

> "7. अब जहां तक प्रत्यर्थी पत्नी की ओर से दी गई इस दलील का संबंध है कि जब तक दोनों पक्षकारों द्वारा सम्मति नहीं दी गई हो, यहां तक कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए भी विवाह के असुधार्य रूप से टूट जाने के आधार पर विवाह का विघटन नहीं किया जा सकता है, इस दलील में कोई सार नहीं है । यदि विवाह के दोनों पक्षकार स्थायी रूप से पृथक्करण के रूप में सहमत होते हैं और/ या विवाह-विच्छेद के लिए सम्मति देते हैं, उस मामले में निश्चित रूप से दोनों पक्षकार पारस्परिक सम्मति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री

[1] (2019) 9 एस. सी. सी. 409.

के लिए सक्षम न्यायालय में समावेदन कर सकते हैं । केवल उस मामले में जहां एक पक्षकार सहमत नहीं होता है और सम्मति नहीं देता है, केवल तब मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए पक्षकारों के बीच सारभूत न्याय करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का अवलंब लिया जाना चाहिए । तथापि, साथ ही साथ, आर्थिक रूप से पत्नी के हित को भी संरक्षित किया जाना आवश्यक है जिससे उसे भविष्य में आर्थिक रूप से परेशानी न उठानी पड़े और उसे दूसरों पर निर्भर न रहना पड़े ।"

30. हम **मुनीष कक्कड़** बनाम **निधि कक्कड़**[1] वाले मामले में संप्रकाशित इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं, जो निम्न प्रकार से है :–

"18. निस्संदेह, प्रत्यर्थी की कोई सम्मति नहीं है । किंतु वास्तविक रूप में, एक-साथ रहने के लिए प्रत्यर्थी सहित पक्षकारों की रजामंदी भी नहीं है । केवल कड़वी यादें और एक-दूसरे के प्रति अत्यधिक गुस्सा है । यह गुस्सा अपीलार्थी को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए और यह भूलकर 'अपना जीवन जीने' के लिए कि दोनों पक्षकार पृथक्त: एक बेहतर रीति में अपना-अपना जीवन जी सकेंगे, अनुज्ञा न देने में कहीं न कहीं ज्यादा बढ़ा हुआ लगता है, क्योंकि दोनों पक्षकारों ने विधि कार्यवाहियों से परेशानी झेली है, जैसा कि हमारे समक्ष दी गई दलीलों से परिलक्षित होता है ।"

31. हम **शिवशंकरन** बनाम **सांथीमीनल**[2] वाले मामले में संप्रकाशित इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं, जो निम्न प्रकार से हैं :–

"19. इस प्रकार, हमारे समक्ष मामला एक ऐसे विवाह का है,

---

[1] (2020) 14 एस. सी. सी. 657.

[2] (2021) एस. सी. सी. आनलाइन एस. सी. 702.

जो कदापि पहले दिन से ही आगे नहीं बढ़ा । विवाह कदापि विवाहोत्तर संभोग द्वारा पूर्णता पर नहीं पहुंचा था और पक्षकार लगभग 20 वर्षों से विवाह की तारीख से ही अलग-अलग रह रहे हैं । अपीलार्थी ने इस विवाह के 6 वर्षों के पश्चात् पुनर्विवाह कर लिया था, जिसके 5 वर्ष विचारण न्यायालय की कार्यवाहियों में व्यतीत हो गए थे । विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के कुछ समय पश्चात् यह विवाह हुआ था । सुलह के सभी प्रयास असफल रहे थे ।

20. उस विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है, प्रत्यर्थी के ये जारी कृत्य क्रूरता की कोटि में आते हैं, भले ही ये कृत्य अर्जी संस्थित करने से पूर्व एक हेतुक के रूप में उद्भूत नहीं हुए थे, जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा पाया गया था । इस आचरण से वैवाहिक विच्छेदन दर्शित होता है और इस प्रकार यह विवाह का विच्छेदन है । वास्तव में, आरंभ में ही कोई एकीकरण नहीं था, जिससे बाद में विच्छेदन किया जाता । तथ्य यह है कि लगातार अभिकथन किए गए हैं और मुकदमेबाजी की कार्यवाहियां चलती रही हैं और यह एक ऐसा पहलू है, जो क्रूरता की कोटि में आ सकता है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पाया गया है । यह विवाह इसकी शुरुआत से ही आगे नहीं बढ़ा था और 5 वर्ष विचारण न्यायालय में व्यतीत हो गए थे, यह स्वीकार करना कठिन है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री के कुछ समय पश्चात्, 6 दिनों के भीतर, हालांकि विवाह की शुरुआत के 6 वर्षों के पश्चात् यह विवाह करना ऐसे आचरण की कोटि में आता है, जिसे अपीलार्थी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया जा सकता है ।

21. सभी पूर्वोक्त तथ्यों के सिंहावलोकन में, यह एक ऐसा मामला है, जहां असुधार्य रूप से विवाह टूट जाने का आधार और पश्चात्वर्ती तथ्यों के कारण क्रूरता का आधार दोनों अपीलार्थी के पक्ष में विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने का समर्थन करते हैं ।

22. इस प्रकार, हमारा यह मत है कि पक्षकारों के बीच विवाह का विघटन करते हुए एक विवाह-विच्छेद की डिक्री न केवल विवाह असुधार्य रूप से टूट जाने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपितु विभिन्न प्रक्रमों पर न्यायिक कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी के पश्चात्वर्ती आचरण को ध्यान में रखते हुए अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन क्रूरता के कारण भी पारित की जाए ।"

32. यह पाए जाने पर कि किसी विवाह को विघटित घोषित करने के लिए पक्षकारों की सम्मति आवश्यक नहीं है, हम उन तथ्यों की भी अनदेखी नहीं कर सकते हैं, जो वास्तव में विद्यमान हैं । यहां एक विवाह है, जो तारीख 31 अक्तूबर, 2004 को हुआ था । उक्त विवाह से जन्मा एक बालक भी है । नि:संदेह धारा 15 का उल्लंघन होने के कारण यह एक संपन्न कार्य बन जाता है किंतु साथ ही साथ हमें अपीलार्थी और प्रत्यर्थी द्वारा पति और पत्नी के रूप में एक-साथ रहने की कोई संभावना दिखाई नहीं पड़ती है । उस विवाह में जैसा भी जीवन था, वह समय बीतने के साथ, नए पक्षकारों के आ जाने से और पक्षकारों के बीच कोई मेल-मिलाप न होने से समाप्त हो गया है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच पुनर्मिलन की थोड़ी सी भी संभावना नहीं है और उसके लिए जो कारण हैं, यद्यपि वे पूर्णतया अपीलार्थी के कृत्यों की वजह से हैं और जिनके लिए प्रत्यर्थी को दोष नहीं दिया जा सकता है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का अंत हो गया है । इसे किसी वापसी के बिंदु के रूप में वर्णित किया जा सकता है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी द्वारा एक-साथ किसी प्रकार का कोई युक्तियुक्त संबंध बनाने की संभावना नहीं है क्योंकि पक्षकारों के बीच बंधन असुधार्य रूप से टूट चुका है और इस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह विचार है कि यह न्याय के हित में और पक्षकारों के प्रति पूर्ण न्याय करने के लिए होगा कि हमें अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का विघटन करते हुए एक आदेश पारित करना चाहिए ।

33. हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमारा यह विनिश्चय अपीलार्थी के

आचरण का हमारे द्वारा अनुमोदन करने पर आधारित नहीं है और न ही यह प्रत्यर्थी के आचरण पर सही-गलत का निर्णय करने पर आधारित है । दूसरे शब्दों में, हमारा यह निष्कर्ष है कि मामले में प्रत्यर्थी निर्दोष है किंतु जो तथ्य उन्होंने उद्घाटित किए हैं और जो परिवर्धन हुए हैं, हमारे लिए न्याय के हित में सर्वोत्तम मार्ग विवाह के विघटन पर विचार करना है ।

34. तद्नुसार, जबकि हम उच्च न्यायालय की अभिपुष्टि करते हैं और प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता करने के आधार पर विघटन की डिक्री प्रदान करने के लिए इनकार करते हैं, हम संविधान के 142 के अधीन हमारी शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह को विघटित करने की घोषणा करते हैं । यह इस शर्त पर होगा कि अपीलार्थी आज की तारीख से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर एक मांग पत्र के द्वारा प्रत्यर्थी को 20,000,00/- रुपए (बीस लाख रुपए) की राशि का संदाय करेगा । हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि यह उस पुत्र को, जिसका जन्म अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह से हुआ था, संपत्ति अधिकारों के विषय में विधि के अधीन उपलब्ध सभी अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े बिना होगा । जब तक पूर्वोक्त रकम का संदाय नहीं किया जाता है, अपीलार्थी प्रत्यर्थी को 7,000/- रुपए प्रति माह का संदाय जारी रखने का दायी होगा ।

35. इस अपील का उपरोक्तानुसार निपटारा किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

जस.

[2022] 1 उम. नि. प. 291

उत्तराखंड राज्य

बनाम

सचेन्दर सिंह रावत

[2022 की दांडिक अपील सं. 143]

4 फरवरी, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300, अपवाद-4 और धारा 302 – हत्या – अभियुक्त और मृतक के बीच एक समारोह में कहा-सुनी होना – समारोह में सम्मिलित अन्य व्यक्तियों के बीच-बचाव के कारण मामला समाप्त हो जाना – अभियुक्त द्वारा बाद में लकड़ी का एक मोटा खुरदरा टुकड़ा लेकर मृतक का पीछा किया जाना और मृतक के मकान के सामने उस पर कई सारे जोरदार प्रहार किया जाना – मृतक को सिर पर पहुंचीं गंभीर क्षतियों के कारण बाद में उसकी मृत्यु हो जाना – घटना को मृतक की पत्नी, मां और अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा देखा जाना – अभियुक्त को दोषसिद्ध और आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मामला धारा 300 के अपवाद-4 के अंतर्गत आने के आधार पर आजीवन कारावास को दस वर्ष के कठोर कारावास में संपरिवर्तित किया जाना – संधार्यता – जहां अभियुक्त और मृतक के बीच हुई कहा-सुनी की घटना समाप्त हो जाने के पश्चात् अभियुक्त बाद में लकड़ी का एक खुरदरा टुकड़ा लेकर मृतक के पीछे भागा और उसे गंभीर क्षतियां कारित कीं और परिणामस्वरूप बाद में उसकी मृत्यु हो गई, वहां यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतक की मृत्यु अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुई लड़ाई में कारित की गई थी, चूंकि अभियुक्त ने पहली घटना समाप्त हो जाने के पश्चात् दूसरी घटना में मृतक को क्षतियां कारित की थीं, इसलिए धारा 300 का अपवाद-4 लागू नहीं होने के कारण अभियुक्त को आजीवन कारावास का दंडादेश देते हुए विचारण

न्यायालय के निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतक विरेन्द्र सिंह और अभियुक्त सचेन्दर सिंह रावत गांव में एक विवाह के अवसर पर मेहंदी समारोह में सम्मिलित हुए थे । रात्रि में, मृतक विरेन्द्र सिंह और अभियुक्त सचेन्दर सिंह रावत के बीच कुछ कहा-सुनी हुई थी । किंतु ग्रामवासियों के बीच-बचाव के कारण मामला आगे नहीं बढ़ सका । रात्रि भोजन के पश्चात्, रात्रि में लगभग 12.00 बजे अभियुक्त ने एक "डंडे/फखड़ियात" – लकड़ी का एक खुरदरा टुकड़ा, जो वह लिए हुए था, से विरेन्द्र सिंह पर आक्रमण करके उस पर प्रहार किए । प्रहार मृतक के सिर पर किया गया था । विरेन्द्र सिंह सुरक्षा के लिए अपने मकान की ओर भागा । अभियुक्त अपने हाथ में "फखड़ियात" लिए हुए मृतक के पीछे भागा । मृतक को सिर पर कई सारी क्षतियां पहुंचीं । खोपड़ी पर अस्थि-भंग था और बाईं तरफ ललाट पर एक घाव था । शिकायतकर्ता, जो मृतक की पत्नी है, ने अपने पति को बचाने की कोशिश की किंतु असफल रही । इसी बीच, उसके पति पर कई प्रहार किए गए । शिकायतकर्ता की सास, गीता देवी भी मृतक के बचाव में आई । गंभीर क्षतियों के कारण विरेन्द्र सिंह बेहोश हो गया । मृतक को उपचार के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया, जहां कुछ दिनों के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई । मृतक की पत्नी ने अभियुक्त-प्रत्यर्थी के विरुद्ध एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की । अन्वेषण समाप्त होने पर अन्वेषक अधिकारी ने अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र फाइल किया । अभियोजन पक्ष की तरफ से साक्ष्य के समापन के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का भी कथन अभिलिखित किया गया । उसके पश्चात्, साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् मृतक की पत्नी, दर्शनी देवी और अन्य के साक्ष्य पर विश्वास करते हुए तथा मृतक को पहुंची क्षतियों की प्रकृति पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आपराधिक मानववध हत्या थी और तद्द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और आजीवन कारावास का

दंडादेश अधिरोपित किया । अभियुक्त ने विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के निर्णय और उसे आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए पारित किए गए आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा, यद्यपि मृतक की पत्नी-अभि. सा. 1 सहित सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास किया, तथापि, यह अभिनिर्धारित किया कि आपराधिक मानववध हत्या की कोटि में नहीं आता है और इसके लिए एकमात्र आधार यह था कि यह एक बर्बरतापूर्ण हत्या नहीं है बल्कि अचानक एक लड़ाई हुई थी, जो दोनों के बीच आवेश की तीव्रता में हुई थी ; जो विवाह समारोह में अचानक हुए झगड़े के परिणामस्वरूप हुई थी और प्रयुक्त किया गया आयुध "फखड़िया" था, जो लकड़ी का एक खुरदरा टुकड़ा होता है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त का मृतक को जान से मारने और/या हत्या करने का कोई आशय था और इसलिए यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आएगा । उच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित करने के पश्चात् और हत्या के निष्कर्ष को हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध में परिवर्तित करने के पश्चात् आजीवन कारावास के दंडादेश को दस वर्ष के कठोर कारावास में संपरिवर्तित कर दिया । राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को विरेन्द्र सिंह नामक व्यक्ति की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था । यह देखा जा सकता है कि घटना दो स्थानों पर घटी थी । अभियुक्त और मृतक के बीच कहा-सुनी की पहली घटना मेहंदी समारोह के स्थान पर हुई थी । उस समय पर ग्रामवासियों के बीच-बचाव के कारण मामला आगे नहीं बढ़ा था । उसके पश्चात्, दूसरी घटना रात्रि में लगभग 12.00 बजे घटी थी, जिसे वास्तविक घटना कहा जा सकता है, जो तब घटी थी, जब अभियुक्त ने

"फखड़ियात" से मृतक पर आक्रमण किया था और मृतक पर कई सारे प्रहार किए थे । मृतक अपने मकान की ओर भागा था तथा अभियुक्त भी उसके पीछे-पीछे भागा था और उसके सिर, जांघ आदि पर प्रहार करना जारी रखा था । अत: दूसरी घटना को एक अचानक हुए झगड़े के उपरांत आवेश की तीव्रता में अचानक हुई लड़ाई का परिणाम होना नहीं कहा जा सकता है । अभियुक्त ने अर्ध-रात्रि में लगभग 12.00 बजे मृतक का पीछा किया था और यहां तक कि मृतक के अपने मकान पर पहुंचने के पश्चात् भी अभियुक्त द्वारा उसके मकान के सामने पिटाई की गई थी, जिसे उसकी पत्नी, अभि. सा. 1 द्वारा देखा गया है । अत: उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करके और/या अभियुक्त की ओर से इस पक्षकथन को स्वीकार करके गलती की है कि घटना मेहंदी समारोह में एक अचानक झगड़ा होने के उपरांत आवेश की तीव्रता में अचानक हुई लड़ाई के कारण घटी थी । दूसरी घटना बिल्कुल भी मेहंदी समारोह के दौरान नहीं घटी थी । दूसरी घटना मृतक के मकान के निकट घटी थी और वह भी तब जब पहली घटना समाप्त हो जाने के पश्चात् सारे व्यक्ति अपने-अपने मकानों पर चले गए थे और उसके पश्चात् अर्ध-रात्रि में 12.00 बजे दूसरी घटना घटी थी, जिसमें अभियुक्त ने मृतक के सिर, जांघ आदि पर "फखड़ियात" से कई प्रहार किए थे । इसलिए उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करके गलती की है कि मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आएगा । मृतक को पहुंची बहुत सारी क्षतियों से यह देखा जा सकता है कि अभियुक्त ने "फखड़ियात" का प्रयोग इतने जोर से किया था कि इसके परिणामस्वरूप दाईं तरफ ललाटीय घाव पर खोपड़ी का अस्थि-भंग हो गया था ; खोपड़ी पर दाईं तरफ 34 टांके लगा घाव था, जो 16 सें. मी. के सिले हुए शिरोबंध के साथ-साथ खोपड़ी की बाईं तरफ के मध्य तक फैला हुआ था ; मस्तिष्क विदीर्ण था और पार्श्विक-ललाटीय भाग पर थक्के मौजूद थे और विदारित मस्तिष्क का घाव पार्श्विक-ललाटीय और कनपटी तक फैला हुआ था । इस प्रकार, इतने जोर से गंभीर क्षतियां कारित करने पर अभियुक्त को कैसे भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद का फायदा मिल सकता है । यह मामला निश्चित रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे और/या चौथे खंडों के अंतर्गत आएगा ।

अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अनुसार यदि मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे और चौथे खंडों के अंतर्गत आता है, तो आपराधिक मानववध को हत्या की कोटि में आने वाला कहा जा सकता है । इसलिए इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद को लागू करके यह मत व्यक्त करते हुए कि आपराधिक मानववध हत्या की कोटि में नहीं आता है, गंभीर गलती कारित की है । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि मुख्य दूसरी घटना बाद में रात्रि में 12.00 बजे मेहंदी समारोह में कहा-सुनी की पहली घटना समाप्त होने के काफी पश्चात् घटी थी, उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद को लागू नहीं करना चाहिए था । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश तथ्यों तथा विधि दोनों के आधार पर असंधार्य है । (पैरा 5, 5.2 और पैरा 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	(2020) 9 एस. एस. सी. 524 : **स्टालिन** बनाम **राज्य** ;	3.6
[2019]	(2019) 5 एस. एस. सी. 639 : **राजस्थान राज्य** बनाम **कन्हैया लाल** ;	3.6
[2019]	(2019) 13 एस. एस. सी. 131 : **राजस्थान राज्य** बनाम **लीला राम** ;	3.6
[2011]	(2011) 10 एस. एस. सी. 604 : **अशोक कुमार मागाभाई वानकर** बनाम **गुजरात राज्य** ;	3.6
[2010]	(2010) 6 एस. एस. सी. 457 : **अरुण राज** बनाम **भारत संघ** ;	3.6
[2010]	(2010) 9 एस. एस. सी. 799 : **सिंगपागु अंजय्या** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	3.6

[2008] (2008) 15 एस. एस. सी. 725 :
बावीसेट्टी कामेश्वर राव बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ; 3.6

[2006] (2006) 11 एस. एस. सी. 444 :
पुलिचेर्ला नागराजू बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ; 3.6

[2003] (2003) 9 एस. एस. सी. 322 :
धीरजभाई गोरखभाई नायक बनाम
गुजरात राज्य ; 3.6

[2000] (2000) 1 एस. एस. सी. 319 :
महेश बाल्मीकि बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 3.6

[1999] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 465 :
विरशा सिंह बनाम **पंजाब राज्य** । 3.6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 143.

2016 की अपीली दांडिक सं. 110 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा तारीख 11 दिसंबर, 2018 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विरेन्द्र रावत

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री नेहा शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – 2016 की दांडिक अपील सं. 110 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा तारीख 11 दिसंबर, 2018 को पारित किए गए उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर उत्तराखंड राज्य ने यह अपील फाइल की है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा की गई उक्त अपील मंजूर की थी और यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रस्तुत मामले में आपराधिक मानववध हत्या नहीं है और परिणामस्वरूप आजीवन कारावास के दंडादेश को दस वर्ष के कठोर कारावास में संपरिवर्तित कर दिया था ।

2. इस अपील में प्रत्यर्थी-मूल अभियुक्त को विरेन्द्र सिंह नामक

व्यक्ति की हत्या कारित करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोपित और विचारित किया गया था । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, तारीख 26 नवंबर, 2014 को संपूर्ण गांव अनिल नामक व्यक्ति के विवाह के अवसर पर मेहंदी समारोह मना रहा था । समारोह में, मृतक विरेन्द्र सिंह और अभियुक्त सचेन्दर सिंह रावत सहित संपूर्ण गांव ने भाग लिया था । रात्रि में, मृतक विरेन्द्र सिंह और अभियुक्त सचेन्दर सिंह रावत के बीच कुछ कहा-सुनी हुई थी । किंतु ग्रामवासियों के बीच-बचाव के कारण मामला आगे नहीं बढ़ सका । रात्रि भोजन के पश्चात्, रात्रि में लगभग 12.00 बजे अभियुक्त ने एक "डंडे/फखड़ियात" – लकड़ी का एक खुरदरा टुकड़ा, जो वह लिए हुए था, से विरेन्द्र सिंह पर आक्रमण करके उस पर प्रहार किए । प्रहार मृतक के सिर पर किया गया था । विरेन्द्र सिंह सुरक्षा के लिए अपने मकान की ओर भागा । अभियुक्त अपने हाथ में "फखड़ियात" लिए हुए मृतक के पीछे भागा । मृतक को सिर पर कई सारी क्षतियां पहुंचीं । खोपड़ी पर अस्थि-भंग था और बाईं तरफ ललाट पर एक घाव था । शिकायतकर्ता, जो मृतक की पत्नी है, ने अपने पति को बचाने की कोशिश की किंतु असफल रही । इसी बीच, उसके पति पर कई प्रहार किए गए । शिकायतकर्ता की सास, गीता देवी भी मृतक के बचाव में आई । गंभीर क्षतियों के कारण विरेन्द्र सिंह बेहोश हो गया । मृतक को आरंभ में डा. शर्मा के पास ले जाया गया, जो घंसाली में रहता था, जो केवल कुछ ही किलोमीटर दूर था, किंतु क्षतिग्रस्त की हालत पर विचार करते हुए उसे महंत इंद्रेश अस्पताल, देहरादून के लिए रेफर किया गया, जहां उसकी शल्य-क्रिया की गई । कुछ दिनों के पश्चात् अर्थात् तारीख 5 दिसंबर, 2014 को विरेन्द्र सिंह का देहांत हो गया ।

2.1 मृतक की पत्नी ने अभियुक्त-प्रत्यर्थी के विरुद्ध एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की । पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण किया गया । अन्वेषण के दौरान, अन्वेषक अधिकारी ने शिकायतकर्ता अर्थात् मृतक की पत्नी सहित प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन अभिलिखित किए । अन्वेषक अधिकारी ने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट आदि सहित चिकित्सा साक्ष्य भी एकत्रित किया । उसके पश्चात्,

अन्वेषण समाप्त होने पर अन्वेषक अधिकारी ने अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र फाइल किया । चूंकि मामला अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था, मामले को सेशन न्यायलय के सुपुर्द किया गया, जहां अभियुक्त का विचारण किया गया । अभियुक्त ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विचारण न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने का दावा किया ।

2.2 अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के विरुद्ध आरोप को सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर 14 साक्षियों की परीक्षा की । अधिकांश साक्षी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे, जिनमें शिकायतकर्ता अर्थात् मृतक की पत्नी भी सम्मिलित थी । अभियोजन पक्ष ने डा. पंकज अरोड़ा, अभि. सा. 11, जिसने मृतक की शल्य-क्रिया की थी, की भी परीक्षा की । अभियोजन पक्ष की तरफ से साक्ष्य के समापन के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का भी कथन अभिलिखित किया गया । उसके पश्चात्, साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् मृतक की पत्नी, दर्शनी देवी और अन्य के साक्ष्य पर विश्वास करते हुए तथा मृतक को पहुंचीं क्षतियों की प्रकृति पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आपराधिक मानववध हत्या थी और तद्द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित किया ।

2.3 अभियुक्त ने विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के निर्णय और उसे आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए पारित किए गए आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2016 की दांडिक अपील सं. 110 फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा, यद्यपि मृतक की पत्नी-अभि. सा. 1 सहित सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास किया, तथापि, यह अभिनिर्धारित किया कि आपराधिक मानव वध हत्या की कोटि में नहीं आता है और इसके लिए एकमात्र आधार यह था कि यह एक बर्बरतापूर्ण

हत्या नहीं है बल्कि अचानक एक लड़ाई हुई थी, जो दोनों के बीच आवेश की तीव्रता में हुई थी ; जो विवाह समारोह में अचानक हुए झगड़े के परिणामस्वरूप हुई थी और प्रयुक्त किया गया आयुध "फखड़िया" था, जो लकड़ी का एक खुरदरा टुकड़ा होता है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त का मृतक को जान से मारने और/या हत्या करने का कोई आशय था और इसलिए यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आएगा । उच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित करने के पश्चात् और हत्या के निष्कर्ष को हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध में परिवर्तित करने के पश्चात् आजीवन कारावास के दंडादेश को दस वर्ष के कठोर कारावास में संपरिवर्तित कर दिया ।

2.4 उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य ने यह अपील फाइल की है ।

3. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री विरेन्द्र रावत ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गंभीर गलती कारित की है कि मृतक की हत्या आपराधिक मानव वध की कोटि में नहीं आती है ।

3.1 यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित करके गलती की है कि यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा चौथे अपवाद के अंतर्गत आएगा ।

3.2 राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह जोरदार दलील दी गई कि केवल इस कारण कि प्रयुक्त आयुध एक "फखड़ियात" था, स्वयमेव यह बात आपराधिक मानववध को हत्या की कोटि में आने वाला आपराधिक मानव वध नहीं बना सकती है । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने शरीर के मार्मिक अंग – सिर पर किए गए बारंबार प्रहारों और मृतक को पहुंचीं उन बहुत-सारी क्षतियों का उचित रूप से मूल्यांकन और उन पर विचार नहीं किया था, जिनके

कारण उसकी मृत्यु हो गई थी ।

3.3 यह भी दलील दी गई कि यहां तक कि उच्च न्यायालय ने इस बात का भी उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया था कि विवाह समारोह के स्थल पर दोनों के बीच कहा-सुनी की पहली घटना के पश्चात् ग्रामवासियों के बीच-बचाव के कारण मामला आगे नहीं बढ़ा था । तथापि, रात्रि में लगभग 12.00 बजे अभियुक्त ने एक "फखड़ियात" से, जो वह लिए हुए था, आक्रमण किया और जब मृतक सुरक्षा के लिए अपने मकान की ओर भागा, अभियुक्त उसके पीछे-पीछे भागा, उसके मकान पर पहुंचा और कई सारे प्रहार किए गए । अत: यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित करके गलती की है कि यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आएगा क्योंकि कोई पूर्व-चिंतन नहीं था और यह मेहंदी समारोह में अचानक हुए झगड़े के कारण अचानक हुई लड़ाई का परिणाम था ।

3.4 यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया था कि मृतक की पिटाई किए जाने की मुख्य घटना मेहंदी समारोह में कहा-सुनी की प्रथम घटना के बाद हुई थी । यह दलील दी गई कि तनिक संदेह के बिना यह कहा जा सकता है कि घटना मेहंदी समारोह में अचानक हुए झगड़े के उपरांत आवेश की तीव्रता में हुई अचानक लड़ाई के कारण घटी थी ।

3.5 आगे यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने मृतक के सिर पर पहुंची बहुत सारी गंभीर क्षतियों पर कतई विचार नहीं किया था । यह दलील दी गई कि अभियुक्त ने "फखड़ियात" का प्रयोग इतने जोर से किया था कि खोपड़ी का अस्थि-भंग हो गया था और बाईं तरफ ललाट पर घाव हो गया था और खोपड़ी की बाईं तरफ 24 टांके लगा घाव खोपड़ी की बाईं तरफ के मध्य से 16 सें. मी. तक लगे टांकों के साथ शिरोबंध तक फैला हुआ था । यह दलील दी गई कि अत: यह मामला निश्चित रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे और चौथे खंडों के अधीन आएगा और इसलिए विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को ठीक ही भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन

अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था ।

3.6 राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने उपरोक्त दलीलों के समर्थन में **स्टालिन** बनाम **राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का जोरदार रूप से अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर **महेश बाल्मीकि** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2]; **धीरजभाई गोरखभाई नायक** बनाम **गुजरात राज्य**[3]; **पुलिचेर्ला नागराजू** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[4]; **सिंगपागु अंजय्या** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[5]; **राजस्थान राज्य** बनाम **कन्हैया लाल**[6]; **अरुण राज** बनाम **भारत संघ**[7]; **अशोक कुमार मागाभाई वानकर** बनाम **गुजरात राज्य**[8]; **राजस्थान राज्य** बनाम **लीला राम**[9]; **बावीसेट्टी कामेश्वर राव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[10] और **विरशा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[11] वाले मामलों में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों पर विचार किया था ।

3.7 उपरोक्त दलीलें देते हुए और पूर्वोक्त विनिश्चयों का अवलंब लेने के उपरांत यह अनुरोध किया गया कि अभियुक्त की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि को अभिखंडित और अपास्त करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाए और विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उसे आजीवन कारावास का दंडादेश देते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित

---

[1] (2020) 9 एस. एस. सी. 524.
[2] (2000) 1 एस. एस. सी. 319.
[3] (2003) 9 एस. एस. सी. 322.
[4] (2006) 11 एस. एस. सी. 444.
[5] (2010) 9 एस. एस. सी. 799.
[6] (2019) 5 एस. एस. सी. 639.
[7] (2010) 6 एस. एस. सी. 457.
[8] (2011) 10 एस. एस. सी. 604.
[9] (2019) 13 एस. एस. सी. 131.
[10] (2008) 15 एस. एस. सी. 725.
[11] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 465.

किया जाए ।

4. प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् काउंसेल, सुश्री नेहा शर्मा ने उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश का समर्थन करने की कोशिश की कि प्रस्तुत मामले में आपराधिक मानववध भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद का अवलंब लेते हुए हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानववध है ।

4.1 अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय द्वारा परवर्ती परिस्थितियों और अन्य बातों पर विचार करने के पश्चात् तर्कपूर्ण कारण दिए गए हैं कि आपराधिक मानववध हत्या की कोटि में नहीं आता है और मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आएगा ।

4.2 यह दलील दी गई कि जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही मत व्यक्त किया गया है, चूंकि अभियुक्त द्वारा प्रयुक्त आयुध एक "फखड़ियात" था, जो कि लकड़ी का एक खुरदरा टुकड़ा है, यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतक को जान से मारने और/या हत्या करने के लिए अभियुक्त का कोई पूर्व-चिंतन और/या कोई आशय था ।

4.3 यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया है कि घटना मेहंदी समारोह में एक अचानक झगड़ा होने पर आवेश की तीव्रता में हुई अचानक लड़ाई में घटी थी और प्रयुक्त आयुध "फखड़ियात" था, जिसका प्रयोग प्राथमिक रूप से वहां आग जलाने के लिए किया जाता है, जहां भोजन पकाया जा रहा हो और जहां आवेश की तीव्रता में अभियुक्त ने "फखड़ियात" को उठा लिया था और इसका प्रयोग किया था, इसलिए मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अधीन आएगा । अत: यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने हत्या के निष्कर्ष को हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध में ठीक ही परिवर्तित किया था और आजीवन कारावास के दंडादेश को दस वर्ष के कठोर कारावास में ठीक ही संपरिवर्तित किया था ।

4.4 उपरोक्त दलीलें देते हुए यह अनुरोध किया गया कि इस अपील को खारिज किया जाए ।

5. हमने संबंधित पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना । प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को विरेन्द्र सिंह नामक व्यक्ति की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था । यह देखा जा सकता है कि घटना दो स्थानों पर घटी थी । अभियुक्त और मृतक के बीच कहा-सुनी की पहली घटना मेहंदी समारोह के स्थान पर हुई थी । उस समय पर ग्रामवासियों के बीच-बचाव के कारण मामला आगे नहीं बढ़ा था । उसके पश्चात्, दूसरी घटना रात्रि में लगभग 12.00 बजे घटी थी, जिसे वास्तविक घटना कहा जा सकता है, जो तब घटी थी, जब अभियुक्त ने "फखड़ियात" से मृतक पर आक्रमण किया था और मृतक पर कई सारे प्रहार किए थे । मृतक अपने मकान की ओर भागा था तथा अभियुक्त भी उसके पीछे-पीछे भागा था और उसके सिर, जांघ आदि पर प्रहार करना जारी रखा था । अत: दूसरी घटना को एक अचानक हुए झगड़े के उपरांत आवेश की तीव्रता में अचानक हुई लड़ाई का परिणाम होना नहीं कहा जा सकता है । अभियुक्त ने अर्ध रात्रि में लगभग 12.00 बजे मृतक का पीछा किया था और यहां तक कि मृतक के अपने मकान पर पहुंचने के पश्चात् भी अभियुक्त द्वारा उसके मकान के सामने पिटाई की गई थी, जिसे उसकी पत्नी, अभि. सा. 1 द्वारा देखा गया है । अत: उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करके और/या अभियुक्त की ओर से इस पक्षकथन को स्वीकार करके गलती की है कि घटना मेहंदी समारोह में एक अचानक झगड़ा होने के उपरांत आवेश की तीव्रता में अचानक हुई लड़ाई के कारण घटी थी । दूसरी घटना बिल्कुल भी मेहंदी समारोह के दौरान नहीं घटी थी । दूसरी घटना मृतक के मकान के निकट घटी थी और वह भी तब जब पहली घटना समाप्त हो जाने के पश्चात् सारे व्यक्ति अपने-अपने मकानों पर चले गए थे और उसके पश्चात् अर्ध-रात्रि में 12.00 बजे दूसरी घटना घटी थी, जिसमें अभियुक्त ने मृतक के सिर, जांघ आदि पर "फखड़ियात" से कई प्रहार किए थे । इसलिए उच्च

न्यायालय ने यह मत व्यक्त करके गलती की है कि मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आएगा ।

5.1 अन्यथा भी, उच्च न्यायालय ने इस बात का उचित रूप से मूल्यांकन और/या विचार नहीं किया था कि मृतक को बहुत सारी क्षतियां पहुंची थीं । चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार, मृतक के शरीर पर निम्नलिखित क्षतियां पाई गई थीं :–

> "शव का बाह्य परीक्षण करने पर निम्नलिखित हालत और क्षतियां पाई गई थीं –
>
> औसत गठन, दोनों उपरि अंगों में शव काठिन्य मौजूद, जो जांघों के निचले आधे भाग तक फैला हुआ था, आंखें आंशिक रूप से खुली हुई, कार्निया में शुष्कता थी, नथूनों में रक्त के थक्के थे ।
>
> (i) खोपड़ी की दाईं तरफ के मध्य से लेकर शिरोबंध पर 16 सें. मी. टांके लगे होने के साथ-साथ खोपड़ी की बाईं तरफ 34 टांके लगा सिला हुआ घाव । टांके धात्विक थे ।
>
> (ii) श्वासनलीच्छेदन से घाव में स्राव मौजूद था, श्वासनली के अंदर 4 सें. मी. आकार का विदीर्ण घाव था, जिसके किनारे पैने और परिष्कृत थे ।
>
> (iii) टांग की हड्डी की बाईं तरफ उपरि दो-तिहाई भाग पर नीले काले रंग के 1 से 2 सें. मी. आकार के बहुत सारे नीले पड़े हुए घाव थे ।
>
> शव का आंतरिक परीक्षण करने पर निम्नलिखित हालत और क्षतियां पाई गई थीं –
>
> (i) बाईं तरफ ललाटीय घाव पर खोपड़ी का अस्थि-भंग । भित्तिकास्थि घाव तीक्ष्ण और परिष्कृत था जिससे कपाल-छेदन का सुझाव प्राप्त हो रहा था और किनारे परिष्कृत थे ।
>
> (ii) मस्तिष्क विदीर्ण था और अग्र-ललाटीय भाग पर थक्के मौजूद थे । विदीर्ण मस्तिष्क का घाव अग्र-ललाटीय भाग से लेकर कनपटी की हड्डी तक था ।"

मृतक को उसके सिर पर पहुंची क्षतियां मृत्यु का मुख्य कारण था ।

5.2 मृतक को पहुंची पूर्वोक्त बहुत सारी क्षतियों से यह देखा जा सकता है कि अभियुक्त ने "फखड़ियात" का प्रयोग इतने जोर से किया था कि इसके परिणामस्वरूप दाईं तरफ ललाटीय घाव पर खोपड़ी का अस्थि-भंग हो गया था ; खोपड़ी पर दाईं तरफ 34 टांके लगा घाव था, जो 16 सें. मी. के सिले हुए शिरोबंध के साथ-साथ खोपड़ी की बांयी तरफ के मध्य तक फैला हुआ था ; मस्तिष्क विदीर्ण था और पार्श्विक-ललाटीय भाग पर थक्के मौजूद थे और विदारित मस्तिष्क का घाव पार्श्विक-ललाटीय और कनपटी तक फैला हुआ था । इस प्रकार, इतने जोर से गंभीर क्षतियां कारित करने पर अभियुक्त को कैसे भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद का फायदा मिल सकता है । यह मामला निश्चित रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे और/या चौथे खंडों के अंतर्गत आएगा ।

6. उपरोक्त तथ्यात्मक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए, इस बिंदु पर कि क्या यह आपराधिक मानव वध हत्या की कोटि में आएगा या नहीं, इस न्यायालय के कुछ विनिश्चयों को निर्दिष्ट और विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

(क) **विरसा सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में पैरा 16 और 17 में यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "16. ..... प्रश्न यह नहीं है कि क्या बंदी का आशय एक गंभीर क्षति कारित करने का था या कोई छुट-पुट क्षति, अपितु क्या उसका आशय वैसी क्षति कारित करना था, जिसे मौजूद होना साबित किया गया है । यदि वह यह दर्शित कर सके कि उसका ऐसा आशय नहीं था, या समग्र परिस्थितियों में ऐसा निष्कर्ष न्यायोचित लगता है तब, निस्संदेह, वह आशय साबित नहीं होता है, जिसकी धारा में अपेक्षा की गई है । किंतु यदि क्षति से परे कोई बात नहीं है और तथ्य यह है कि अपीलार्थी ने इसे कारित किया था, तब एकमात्र संभाव्य निष्कर्ष यह निकलता है कि उसका

आशय इस क्षति को कारित करना था । क्या वह इसकी गंभीरता को जानता था या गंभीर परिणाम पहुंचाने का आशय रखता था, यह बात न तो यहां है और न वहां । जहां तक आशय का संबंध है, प्रश्न यह नहीं है कि क्या उसका आशय जान से मारने का था, या एक विशिष्ट गंभीर कोटि की क्षति पहुंचाना था अपितु क्या उसका आशय प्रश्नगत क्षति पहुंचाना था और जब एक बार उस क्षति का विद्यमान होना साबित हो जाता है तब इसे कारित करने का आशय होने की तब तक अवधारणा की जाएगी, जब तक साक्ष्य या परिस्थितियों से विपरीत निष्कर्ष न निकलता हो । किंतु क्या आशय था या नहीं, यह एक तथ्य का प्रश्न है न कि विधि का । क्या घाव गंभीर है या अन्यथा, और यदि गंभीर है तो कितना गंभीर है, यह एक पूर्णतया अलग और सुभिन्न प्रश्न है और इसका इस प्रश्न से कोई सरोकार नहीं है कि क्या बंदी का आशय प्रश्नगत क्षति कारित करने का था या नहीं ।

17. यह सही है कि किसी प्रस्तुत मामले में जांच को क्षति की गंभीरता से संबद्ध किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, यदि यह साबित किया जा सके, या समग्र परिस्थितियों में यह निष्कर्ष न्यायोचित लगता हो कि बंदी का आशय केवल एक बाह्य खरोंच कारित करने का था और दुर्घटनावश उसका शिकार व्यक्ति लड़खड़ा गया था और उस तलवार या भाले पर गिर गया था, जिसका प्रयोग किया गया था, तब निस्संदेह, अपराध हत्या का नहीं है । किंतु इसका कारण यह नहीं है कि बंदी का आशय इतनी गंभीर क्षति कारित करने का नहीं था, जो कारित हो गई थी किंतु क्योंकि उसका आशय बिल्कुल भी प्रश्नगत क्षति कारित करने का नहीं था । ऐसे किसी मामले में उसका आशय एक पूर्णतया भिन्न क्षति कारित करने का रहा होगा । यह फर्क विधि का नहीं है अपितु तथ्य का है ; ..... ।"

(मूल निर्णय में रेखांकन किया गया)

(क) **धीरजभाई गोरखभाई नायक** (उपर्युक्त) वाले मामले में भारतीय

दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 की प्रयोज्यता पर पैरा 11 में यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "11. भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत अचानक हुई लड़ाई में किए गए कृत्य आते हैं । उक्त अपवाद प्रथम अपवाद के अंतर्गत न आने वाले प्रकोपन के मामले के संबंध में है, जिसके पश्चात् इसका स्थान और अधिक समुचित हो गया होता । यह अपवाद उसी सिद्धांत पर आधारित है क्योंकि दोनों में पूर्व-चिंतन का अभाव होता है । किंतु अपवाद 1 के मामले में, आत्म-संयम पूर्णत: खो जाता है, जबकि अपवाद 4 के मामले में, केवल यह है कि आवेश की ऐसी तीव्रता जो व्यक्तियों के संयम का हरण कर लेती है और उन्हें वे कार्य करने के लिए उकसाती है, जो वे अन्यथा नहीं करते । अपवाद-1 जैसा प्रकोपन अपवाद 4 में है, किंतु कारित की गई क्षति उस प्रकोपन का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होती है । वास्तव में, अपवाद 4 उन मामलों के संबंध में है जिनमें इस बात के होते हुए भी कि एक प्रहार किया गया होगा, या विवाद के आरंभ में कोई प्रकोपन दिया गया हो या किसी भी प्रकार से झगड़ा आरंभ हुआ हो, फिर भी दोनों पक्षकारों का पश्चात्वर्ती आचरण दोषिता के संबंध में उन्हें एक-समान आधार पर ले जाता है । 'अचानक लड़ाई' का अर्थ है पारस्परिक प्रकोपन और दोनों तरफ से प्रहार किया जाना । तब कारित मानववध का एक- तरफा प्रकोपन से स्पष्ट रूप से पता नहीं चलता है, न ही ऐसे मामलों में सारा दोष एक पक्ष पर डाला जा सकता है । क्योंकि यदि ऐसा होगा, तो अधिक उचित रूप से लागू होने वाला जो अपवाद होगा वह अपवाद 1 होगा । यहां लड़ाई के लिए कोई पूर्ववर्ती विचार-विमर्श या संकल्प नहीं होता है । लड़ाई अचानक होती है, जिसके लिए दोनों पक्षकारों को कमोवेश दोष दिया जाना चाहिए । यह हो सकता है कि उनमें से एक ने इसकी शुरुआत की हो, किंतु यदि दूसरे ने इसे अपने आचरण से बढ़ाया न होता तो यह उतना गंभीर मोड़ नहीं लेती, जितना इसने लिया । इसमें पारस्परिक प्रकोपन और वृद्धि हो जाने के कारण लड़ाई करने वाले प्रत्येक पक्ष पर

उसके हिस्से के दोष का विभाजन करना कठिन है । अपवाद 4 की सहायता वहां ली जा सकती है यदि मृत्यु (क) पूर्व-चिंतन के बिना, (ख) अचानक हुई लड़ाई में, (ग) अपराधियों द्वारा असम्यक् लाभ लिए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति में कार्य किए बिना कारित की गई है, और (घ) लड़ाई अवश्य मृत्यु-प्राप्त व्यक्ति के साथ होनी चाहिए । किसी मामले को अपवाद 4 के भीतर लाने के लिए इसमें वर्णित सभी संघटकों का पाया जाना आवश्यक है । यह उल्लेखनीय है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 में पाई जाने वाली 'लड़ाई' को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । ताली दोनों हाथों से बजती है । आवेश की तीव्रता के लिए यह अपेक्षित है कि आवेश को शांत होने के लिए कोई समय नहीं होना चाहिए और इस मामले में, पक्षकारों ने आरंभ में मौखिक कहा-सुनी के कारण स्वयमेव उत्तेजना में कार्य किया था । लड़ाई दो या अधिक व्यक्तियों के बीच, चाहे आयुधों से या आयुधों के बिना, एक मुठभेड़ होती है । ऐसा कोई साधारण नियम प्रतिपादित करना संभव नहीं है कि अचानक झगड़ा किसे समझा जाएगा । यह एक तथ्य का प्रश्न है और झगड़ा अचानक है या नहीं, आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा । अपवाद 4 को लागू करने के लिए, यह दर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि अचानक एक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्व-चिंतन नहीं था । यह भी दर्शित किया जाना आवश्यक है कि अपराधी ने असम्यक् लाभ नहीं उठाया था या किसी क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति में कार्य नहीं किया था । उपबंध में प्रयुक्त अनुसार 'असम्यक् लाभ' अभिव्यक्ति से 'अनुचित लाभ' अभिप्रेत है ।"

(ग) **पुलिचेर्ला नागराजू** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय को हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध के मामले और मृत्यु कारित करने के आशय पर विचार करना था । इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया था कि मृत्यु कारित करने के आशय का पता साधारणतया, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित कुछेक या कई परिस्थितियों के संयोजन से लगाया जा

सकता है – (i) प्रयुक्त आयुध की प्रकृति ; (ii) क्या अभियुक्त आयुध लिए हुए था या घटनास्थल से उठाया गया था ; (iii) क्या प्रहार शरीर के महत्वपूर्ण भाग पर किया गया है ; (iv) क्षति कारित करने में प्रयोग किए गए बल की मात्रा ; (v) क्या कृत्य अचानक झगड़े या अचानक लड़ाई या खुली लड़ाई के अनुक्रम में किया गया था ; (vi) क्या घटना यकायक घटी थी या क्या कोई पूर्व-चिंतन था; (vii) क्या कोई पहले से दुश्मनी थी या मृतक एक अजनबी था ; (viii) क्या कोई गंभीर और अचानक प्रकोपन था, और यदि ऐसा था तो ऐसे प्रकोपन का कारण ; (ix) क्या यह आवेश की तीव्रता में किया गया था ; (x) क्या क्षति कारित करने वाले व्यक्ति ने असम्यक् लाभ उठाया था या किसी क्रूरतापूर्ण और अप्रायिक रीति में कार्य किया गया था ; (xi) क्या अभियुक्त ने एक ही प्रहार किया था या कई प्रहार किए थे । पैरा 29 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :–

> "29. अत: न्यायालय को आशय के महत्वपूर्ण प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए सावधानी और तर्कतापूर्ण अग्रसर होना चाहिए क्योंकि इससे इस बात का विनिश्चय होगा कि क्या मामला धारा 302 अथवा धारा 304 भाग 1 या 304 भाग 2 के अधीन आता है । बहुत सारे तुच्छ या महत्वहीन विषय – कोई फल तोड़ लेना, आवारा पशु, बालकों का झगड़ा, कोई अपमानजनक शब्द बोलना या यहां तक कि आपत्तिजनक दृष्टि से देखना, झगड़े और सामूहिक संघर्ष का कारण बन जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप हत्याएं हो जाती हैं । प्रायिक हेतु जैसे प्रतिशोध, लालच, ईर्ष्या या संदेह का ऐसे मामलों में पूरी तरह अभाव हो सकता है । हो सकता है कोई आशय भी न हो । हो सकता है कोई पूर्व-चिंतन भी न हो । वास्तव में, यहां तक कि आपराधिकता भी न हो । इस सिलसिले के दूसरे छोर पर, हत्या के ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अभियुक्त ऐसा मामला प्रस्तुत करने का प्रयत्न करके हत्या की शास्ति से बचने का प्रयत्न कर सकता है कि मृत्यु कारित करने का कोई आशय नहीं था । यह सुनिश्चित करने का कार्य न्यायालयों का है कि धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या के मामले धारा 304 भाग

I/II के अधीन दंडनीय अपराधों में संपरिवर्तित न हों, या हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध के मामले धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या के रूप में न समझे जाएं । मृत्यु कारित करने के आशय का पता साधारणतया अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कुछेक या कई परिस्थितियों के संयोजन से लगाया जा सकता है – (i) प्रयुक्त आयुध की प्रकृति ; (ii) क्या अभियुक्त आयुध लिए हुए था या घटनास्थल से उठाया गया था ; (iii) क्या प्रहार शरीर के महत्वपूर्ण भाग पर किया गया है ; (iv) क्षति कारित करने में प्रयोग किए गए बल की मात्रा ; (v) क्या कृत्य अचानक झगड़े या अचानक लड़ाई या खुली लड़ाई के अनुक्रम में किया गया था ; (vi) क्या घटना यकायक घटी थी या क्या कोई पूर्व-चिंतन था; (vii) क्या कोई पहले से दुश्मनी थी या मृतक एक अजनबी था ; (viii) क्या कोई गंभीर और अचानक प्रकोपन था, और यदि ऐसा था तो ऐसे प्रकोपन का कारण ; (ix) क्या यह आवेश की तीव्रता में किया गया था ; (x) क्या क्षति कारित करने वाले व्यक्ति ने असम्यक् लाभ उठाया था या किसी क्रूरतापूर्ण और अप्रायिक रीति में कार्य किया गया था ; (xi) क्या अभियुक्त ने एक ही प्रहार किया था या कई प्रहार किए थे । परिस्थितियों की उपरोक्त सूची, निस्संदेह, नि:शेष नहीं है और अलग-अलग मामलों के संदर्भ में कई अन्य विशेष परिस्थितियां हो सकती हैं जो आशय के प्रश्न पर रोशनी डाल सकती हैं । चाहे जो भी स्थिति हो ।"

(घ) **सिंगपागु अंजय्या** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में, इसी प्रकार के तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि अभियुक्त का आशय मृतक की मृत्यु कारित करना था । पैरा 16 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :–

"16. हमारी राय में, कोई भी व्यक्ति अभियुक्त के मन में नहीं उतर सकता है, उसके आशय का पता प्रयुक्त आयुध, हमला करने के लिए चयन किए गए शरीर के अंग और कारित की गई

क्षतियों की प्रकृति से लगाया जा सकता है । इस मामले में, अपीलार्थी ने आक्रामक आयुध के रूप में एक सब्बल का चयन किया था । इसके अतिरिक्त उसने क्षति कारित करने के लिए शरीर के महत्वपूर्ण अंग अर्थात् सिर का चयन किया था, जिस पर खोपड़ी का बहुविध अस्थि-भंग हुआ था । इससे स्पष्ट रूप से वह बल दर्शित होता है जिस बल के साथ अपीलार्थी ने आयुध का प्रयोग किया था । इन सभी बातों के संचयी प्रभाव से अप्रतिरोध्य रूप से केवल और केवल एक निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी का आशय मृतक की मृत्यु कारित करना था ।"

(ङ) **कन्हैया लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पैरा 7.4 और 7.5 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"7.4 अशोक कुमार मागाभाई वानकर **बनाम** गुजरात राज्य [(2011) 10 एस. सी. सी. 604] वाले मामले में मृत्यु मृतक के सिर पर लकड़ी के मूसल से एक प्रहार करके कारित की गई थी । यह पाया गया था कि अभियुक्त ने मूसल का प्रयोग इतने जोर से किया था कि मृतक के सिर के दो टुकड़े हो गए थे । इस न्यायालय ने इस बात पर विचार किया कि क्या मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आएगा या धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आएगा । इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि मृतक को पहुंची क्षति से न केवल विपदग्रस्त की मृत्यु कारित करने में अभियुक्त का आशय प्रदर्शित होता है, अपितु इस संबंध में अभियुक्त का ज्ञान भी प्रदर्शित होता है । इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया कि यह धावा विपदग्रस्त की मृत्यु कारित करने से भिन्न कुछ और नहीं हो सकता था । यह मत व्यक्त किया गया कि कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति किसी तनिक संदेह के बिना इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि ऐसे आयुध से शरीर के ऐसे महत्वपूर्ण अंग पर ऐसी क्षति कारित होने से मृत्यु हो जाएगी ।

7.5 राजस्थान राज्य **बनाम** लीला राम [(2019) 13 एस. सी.

सी. 131] वाले मामले में हाल ही के विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया और प्रस्तुत विवाद्यक अर्थात् एकल प्रहार की दशा में क्या मामला धारा 302 के अधीन आएगा या धारा 304 भाग 1 या धारा 304 भाग 2 के अधीन आएगा, इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् इस न्यायालय ने निर्णय [राजस्थान राज्य **बनाम** लीला राम (2019) 13 एस. सी. सी. 131] को उलट दिया और अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । उसी विनिश्चय में, इस न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अपवाद 4 पर भी विचार किया था और पैरा 19 में निम्नलिखित व्यक्त किया था :–

> '19. ..... अपवाद 4 के अधीन आपराधिक मानववध हत्या नहीं है यदि इस उपबंध में अंतर्विष्ट शर्तें पूरी हो जाती हैं । वे हैं : (i) मृत्यु पूर्व-चिंतन के बिना किया गया था ; (ii) अचानक लड़ाई हुई थी ; (iii) कृत्य अचानक हुए झगड़े के उपरांत आवेश की तीव्रता में किया गया हो ; और (iv) अपराधी ने असम्यक् लाभ न लिया हो या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति में कार्य न किया हो ।'"

7. प्रस्तुत मामले के तथ्यों को पूर्वोक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि को लागू करते हुए और यह तथ्य होते हुए कि अभियुक्त ने शरीर के महत्वपूर्ण अंग - सिर पर कई प्रहार/बहुविध प्रहार किए थे, जिनके परिणामस्वरूप गंभीर क्षतियां पहुंची थीं और उसने "फखड़ियात" का प्रयोग इतने जोर से किया था, जिसके परिणामस्वरूप खोपड़ी का अस्थि-भंग हो गया था और बांयी तरफ ललाट पर घाव था और खोपड़ी की बांयी तरफ 34 टांके लगा घाव खोपड़ी की दाईं तरफ के मध्य से शिरोबंध के साथ-साथ 16 सें. मी. के टांकों के घाव तक फैला हुआ था, हमारी यह राय है कि ये मामला भारतीय दंड संहिता की धारा तीसरे और चौथे खंडों के अधीन आएगा । भारतीय दंड संहिता की धारा का तीसरा और चौथा खंड निम्नलिखित है :–

> "तीसरा – यदि वह किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित

करने के आशय से किया गया हो और वह शारीरिक क्षति, जिसके कारित करने का आशय हो, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो, अथवा

चौथा – यदि कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि वह कार्य इतना आसन्नसंकट है कि पूरी अधिसंभाव्यता है कि वह मृत्यु कारित कर ही देगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित कर ही देगा, जिससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है और वह मृत्यु कारित करने या पूर्वोक्त रूप की क्षति कारित करने का जोखिम उठाने के लिए किसी प्रतिहेतु के बिना ऐसा कार्य करे ।"

अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अनुसार यदि मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे और चौथे खंडों के अंतर्गत आता है, तो आपराधिक मानववध को हत्या की कोटि में आने वाला कहा जा सकता है । इसलिए इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद को लागू करके यह मत व्यक्त करते हुए कि आपराधिक मानववध हत्या की कोटि में नहीं आता है, गंभीर गलती कारित की है । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि मुख्य दूसरी घटना बाद में रात्रि में 12.00 बजे मेहंदी समारोह में कहा-सुनी की पहली घटना समाप्त होने के काफी पश्चात् घटी थी, उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद को लागू नहीं करना चाहिए था । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश तथ्यों तथा विधि दोनों के आधार पर असंधार्य है ।

8. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से यह अपील मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय द्वारा हत्या के निष्कर्ष को हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानववध के निष्कर्ष में परिवर्तित करते हुए और परिणामत: आजीवन कारावास के दंडादेश को दस वर्ष के कठोर कारावास में संपरिवर्तित करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थी-अभियुक्त को मृतक विरेन्द्र सिंह को जान से मारने और/या हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा

302 के अधीन अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है और उसे आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जाता है । तद्नुसार, विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उसे आजीवन कारावास का दंडादेश देते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश को तद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

संसद् के अधिनियम

विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967

(1967 का अधिनियम संख्यांक 37)

[30 दिसम्बर, 1967]

व्यष्टियों और संगमों के कतिपय विधिविरुद्ध क्रियाकलाप के अधिक प्रभावी निवारण [1][और आतंकवादी क्रियाकलापों से निपटने के लिए] और तत्संसक्त विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

[2][संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने, 28 सितम्बर, 2001 को अपनी 4385वीं बैठक में, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अध्याय 7 के अधीन संकल्प 1373 (2001) को अंगीकार किया जिसमें सभी राज्यों से अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए उपाय करने की अपेक्षा की गई है ;

और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के संकल्प 1267 (1999), संकल्प 1333 (2000), संकल्प 1363 (2001), संकल्प 1390 (2002), संकल्प 1455 (2003), संकल्प 1526 (2004), संकल्प 1566 (2004), संकल्प 1617 (2005), संकल्प 1735 (2006), और संकल्प 1822 (2008) में राज्यों से कतिपय आतंकवादियों और आतंकवादियों संगठनों के विरुद्ध कार्रवाई करने, आस्तियों और अन्य आर्थिक संसाधनों पर रोक लगाने, अपने राज्यक्षेत्रों में प्रवेश करने या राज्यक्षेत्र में से अभिवहन करने को निवारित करने और अनुसूची में सूचीबद्ध व्यष्टियों या अस्तित्वों को आयुध और गोला बारूद के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रदाय, विक्रय या अंतरण का निवारण करने की अपेक्षा की गई है ;

और केन्द्रीय सरकार ने, संयुक्त राष्ट्र (सुरक्षा परिषद्) अधिनियम, 1947 (1947 का 43) की धारा 2 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आतंकवाद का निवारण और दमन (सुरक्षा परिषद् के संकल्पों का कार्यान्वयन) आदेश, 2007 किया है ;

---

[1] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 2 द्वारा (21.9.2004 से) अंतःस्थापित ।

[2] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

और उक्त संकल्पों और आदेश को प्रभावी करने और आतंकवादी क्रियाकलापों का निवारण करने और उनका मुकाबला करने तथा उससे संबद्ध या उसके आनुषंगिक विषयों के लिए विशेष उपबंध करना आवश्यक समझा गया है ।]

भारत गणराज्य के अठारहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारंभिक

[1][**1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और लागू होना** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है ।

(3) प्रत्येक व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन, उसके उपबंधों के प्रतिकूल प्रत्येक कार्य या लोप के लिए, जिसके लिए वह भारत में दोषी ठहराया जाता है, दंड का दायी होगा ।

(4) किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में, जो भारत से परे कोई ऐसा अपराध करता है, जो इस अधिनियम के अधीन दंडनीय है, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार उसी रीति से कार्यवाही की जाएगी मानो ऐसा कार्य भारत में किया गया था ।

(5) इस अधिनियम के उपबंध निम्नलिखित को भी लागू होंगे, –

(क) भारत के बाहर भारत के नागरिक ;

(ख) सरकार की सेवा में व्यक्ति, चाहे वे कहीं भी हों ; और

(ग) भारत में रजिस्ट्रीकृत पोतों और वायुयानों पर के व्यक्ति, चाहे वे कहीं भी हों ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

---

[1] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 4 द्वारा (21.9.2004 से) प्रतिस्थापित ।

(क) "संगम" से व्यष्टियों का कोई समुच्चय या निकाय अभिप्रेत है ;

(ख) "भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग का अध्यर्पण" के अंतर्गत ऐसे किसी भाग पर किसी विदेश के दावे का ग्रहण किया जाना है ;

(ग) "संहिता" से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) अभिप्रेत है ;

(घ) "न्यायालय" से संहिता के अधीन इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अपराधों का विचारण करने के लिए अधिकारिता रखने वाला कोई दंड न्यायालय अभिप्रेत है [1][और इसमें राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 की धारा 11 के अधीन या धारा 21 के अधीन गठित कोई विशेष न्यायालय सम्मिलित है ;]

(ङ) "अभिहित प्राधिकारी" से यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार का ऐसा अधिकारी, जो उस सरकार के संयुक्त सचिव की पंक्ति से नीचे का न हो या राज्य सरकार का ऐसा अधिकारी जो उस सरकार के सचिव की पंक्ति से नीचे का न हो, जिसे केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा, राजपत्र में प्रकाशित किसी अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट किया जाए, अभिप्रेत है ;

[2][(ङक) "आर्थिक सुरक्षा" के अंतर्गत वित्तीय, धनीय और राजकोषीय स्थायित्व, उत्पादन और वितरण के साधनों की सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, जीविका सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा, पारिस्थितिक और पर्यावरणीय सुरक्षा भी है ;]

[3][(ङख) "आदेश" से, समय-समय पर, यथा संशोधित आतंकवाद का निवारण और दमन (सुरक्षा परिषद् के संकल्पों का कार्यान्वयन) आदेश, 2007 अभिप्रेत है ;]

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[3] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 2 द्वारा पुन:अक्षरांकित ।

[1][(ङग) "व्यक्ति" के अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं, –

(i) कोई व्यष्टि,

(ii) कोई कंपनी,

(iii) कोई फर्म,

(iv) कोई संगठन या कोई व्यक्ति-संगम या व्यष्टि-निकाय चाहे वह निगमित हो या नहीं,

(v) ऐसा प्रत्येक कृत्रिम विधिक व्यक्ति, जो पूर्ववर्ती उपखंडों में से किसी के अंतर्गत नहीं आता है, और

(vi) पूर्ववर्ती उपखंडों में से किसी के अंतर्गत आने वाले किसी व्यक्ति के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन कोई अभिकरण, कार्यालय या शाखा;]

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

[2][(छ) "आतंकवाद" के आगम से, –

(i) सभी प्रकार की ऐसी संपत्तियां अभिप्रेत हैं, जो किसी आतंकवादी कार्य के करने से व्युत्पन्न हुई हों या अभिप्राप्त की गई हों या किसी आतंकवादी कार्य से संबंधित निधियों के माध्यम से अर्जित की गई हों, उस व्यक्ति का विचार किए बिना, जिसके नाम में ऐसे आगम हैं या जिसके कब्जे में वे पाए जाते हैं ; या

(ii) कोई ऐसी संपत्ति अभिप्रेत है, जिसका किसी आतंकवादी कार्य के लिए या किसी व्यष्टि आतंकवादी या किसी आतंकवादी गैंग या किसी आतंकवादी संगठन के प्रयोजन के लिए उपयोग किया जा रहा है या उपयोग किया जा रहा है या उपयोग किया जाना आशयित है ।

स्पष्टीकरण – इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए यह

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

घोषित किया जाता है कि "आतंकवाद के आगम" पद के अंतर्गत ऐसी कोई सम्पत्ति भी है, जिसका उपयोग आतंकवाद के लिए किया जाना आशयित है ।]

[1][(ज) "संपत्ति" से प्रत्येक वर्णन की संपत्ति और आस्तियां, चाहे वे मूर्त या अमूर्त, जंगम या स्थावर, भौतिक या अभौतिक हों और बैंक-प्रत्ययों, यात्री चैकों, बैंक चैकों, मनी आर्डरों, शेयरों, प्रतिभूतियों, बंधपत्रों, ड्राफ्टों, प्रत्यय पत्रों, नकदी और बैंक खाते, जिसमें किसी भी प्रकार से अर्जित निधि सम्मिलित है, के माध्यम से ऐसी संपत्ति या आस्तियों के हक या उनमें हित के साक्ष्यस्वरूप किसी भी रूप में, [2][जिसके अंतर्गत इलैक्ट्रानिक या अंकीय रूप भी है, किंतु जो उस तक सीमित नहीं है] विधिक दस्तावेज, विलेख और लिखतें अभिप्रेत हैं ;]

(जक) "अनुसूची" से इस अधिनियम की अनुसूची अभिप्रेत है ;]

(झ) "भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग का संघ से विलग हो जाना" के अंतर्गत यह अवधारित करने के लिए किसी दावे का प्राख्यान आता है कि क्या ऐसा भाग भारत के राज्यक्षेत्र का भाग रहेगा ;

(ञ) किसी संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में "राज्य सरकार" से उसका प्रशासक अभिप्रेत है ;

(ट) "आतंकवादी कार्य" का वही अर्थ है, जो धारा 15 में उसका है और "आतंकवाद" तथा "आतंकवादी" पदों का तद्नुसार अर्थ लगाया जाएगा ;

(ठ) "आतंकवादी गैंग" से आतंकवादी संगठन से भिन्न कोई संगम, चाहे व्यवस्थित हो या अन्यथा, जो आतंकवादी कार्य से संबंधित या उसमें अंतर्वलित है, अभिप्रेत है ;

(ड) "आतंकवादी संगठन" से अनुसूची में सूचीबद्ध कोई संगठन

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

या इस प्रकार सूचीबद्ध किसी संगठन के रूप में उसी नाम से कार्य करने वाला कोई संगठन अभिप्रेत है ;

(ढ) "अधिकरण" से धारा 5 के अधीन गठित अधिकरण अभिप्रेत है ;

(ण) "विधिविरुद्ध क्रियाकलाप" से किसी व्यष्टि या संगम के संबंध में, ऐसे व्यष्टि या संगम द्वारा (चाहे कोई कार्य करके, या बोले गए अथवा लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा, या दृश्यरूपण द्वारा या अन्यथा) की गई कोई ऐसी कार्रवाई अभिप्रेत है, –

(i) जो किसी भी आधार पर, चाहे वह कुछ भी हो, भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग का अध्यर्पण या भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग का संघ से विलग हो जाना घटित करने के लिए आशयित है, या उसके लिए किसी दावे का समर्थन करती है, या जो ऐसा अध्यर्पण या विलग हो जाना घटित करने के लिए किसी व्यष्टि या व्यष्टियों के समूह को उद्दीप्त करती है ; या

(ii) जिससे भारत की प्रभुता और प्रादेशिक अखंडता का अनु-अंगीकरण होता है या उन पर आक्षेप होता है या जो उन्हें विच्छिन्न करती है या विच्छिन्न करने के लिए आशयित है ; या

(iii) जो भारत के विरुद्ध द्रोह कारित करती है या द्रोह कारित करने के लिए आशयित है ;

(त) "विधिविरुद्ध संगम" से कोई ऐसा संगम अभिप्रेत है –

(i) जिसका उद्देश्य कोई विधिविरुद्ध क्रिया है या जो कोई विधिविरुद्ध क्रिया करने के लिए व्यक्तियों को प्रोत्साहित करता है या उसकी सहायता करता है अथवा जिसके सदस्य ऐसी क्रिया करते हैं ; अथवा

(ii) जिसका उद्देश्य भारतीय दंड संहिता (1860 का 45)

की धारा 153क या धारा 153ख के अधीन दंडनीय कोई कार्य है या जो कोई ऐसा कार्य करने के लिए व्यक्तियों को प्रोत्साहित करता है या उनकी सहायता करता है अथवा जिसके सदस्य कोई ऐसा कार्य करते हैं :

परंतु उपखंड (ii) की कोई बात जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू नहीं होगी ।

(थ) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और संहिता में परिभाषित हैं, वही अर्थ होंगे जो क्रमश: उनके संहिता में हैं ।

(2) इस अधिनियम में किसी अधिनियमिति या उसके किसी उपबंध के प्रति किसी निर्देश का, किसी ऐसे क्षेत्र के संबंध में, जिसमें ऐसी अधिनियमिति या ऐसा उपबंध प्रवृत्त नहीं है, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस क्षेत्र में प्रवृत्त तत्समान विधि या तत्समान विधि के सुसंगत उपबंध हैं, यदि कोई हो, के प्रति निर्देश है ।]

अध्याय 2
विधिविरुद्ध संगम

3. किसी संगम के विधिविरुद्ध होने की घोषणा – (1) यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि कोई संगम विधिविरुद्ध संगम है, या हो गया है तो, वह ऐसे संगम को शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, विधिविरुद्ध घोषित कर सकेगी ।

(2) ऐसी हर अधिसूचना में वे आधार जिन पर वह निकाली गई है तथा ऐसी अन्य विशिष्टियां, जिन्हें केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझे, विनिर्दिष्ट होंगी :

परन्तु इस उपधारा में की कोई बात केन्द्रीय सरकार से किसी ऐसे तथ्य को प्रकट करने की अपेक्षा नहीं करेगी जिसे प्रकट करना वह लोक हित के विरुद्ध समझती है ।

(3) ऐसी कोई अधिसूचना तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि उसमें की गई घोषणा की अधिकरण ने, धारा 4 के अधीन किए गए

किसी आदेश द्वारा, पुष्टि न कर दी हो और वह आदेश शासकीय राजपत्र में प्रकाशित न कर दिया गया हो :

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनमें उस सरकार के लिए किसी संगम को तात्कालिक प्रभाव से विधिविरुद्ध घोषित करना आवश्यक हो जाता है, तो वह ऐसे कारणों से, जिन्हें लिखित रूप में कथित किया जाएगा, निदेश दे सकेगी कि अधिसूचना, किसी ऐसे आदेश के अध्यधीन रहते हुए, जो धारा 4 के अधीन किया जाएगा, शासकीय राजपत्र में उसके प्रकाशन की तारीख से प्रभावी होगी ।

(4) ऐसी हर अधिसूचना शासकीय राजपत्र में प्रकाशित की जाने के अतिरिक्त कम-से-कम एक ऐसे दैनिक समाचारपत्र में प्रकाशित की जाएगी जिसका परिचालन उस राज्य में हो जिसमें प्रभावित संगम का प्रधान कार्यालय, यदि कोई हो स्थित हो, और ऐसे संगम पर उसकी तामील भी ऐसी रीति से की जाएगी जैसी, केन्द्रीय सरकार ठीक समझे तथा ऐसी तामील कराने में निम्नलिखित सभी या कोई ढंग अनुसरित किए जा सकेंगे, अर्थात् :–

(क) अधिसूचना की एक प्रति को, संगम के कार्यालय के, यदि कोई हो, किसी सहजदृश्य भाग में लगाना ; अथवा

(ख) अधिसूचना की एक प्रति की जहां संभव हो, संगम के प्रधान पदाधिकारियों पर यदि कोई हों, तामील करना ; अथवा

(ग) अधिसूचना की अन्तर्वस्तुओं को उस क्षेत्र में जिसमें संगम के क्रियाकलाप मामूली तौर से किए जाते हैं डोंडी पिटवा कर या लाउडस्पीकरों द्वारा उद्घोषित करना ; अथवा

(घ) अन्य ऐसी रीति जो विहित की जाए ।

4. अधिकरण को निर्देश – (1) जहां कि धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन निकाली गई किसी अधिसूचना द्वारा कोई संगम विधिविरुद्ध घोषित किया गया है वहां केन्द्रीय सरकार, उक्त उपधारा के अधीन अधिसूचना के प्रकाशित किए जाने की तारीख से तीस दिन के भीतर, वह अधिसूचना, अधिकरण को यह न्यायनिर्णीत करने के प्रयोजनार्थ

निर्देशित करेगी कि संगम को विधिविरुद्ध घोषित करने का पर्याप्त हेतुक है या नहीं ।

(2) उपधारा (1) के अधीन निर्देश प्राप्त होने पर, अधिकरण प्रभावित संगम से, लिखित सूचना द्वारा यह अपेक्षा करेगा कि वह, ऐसी सूचना की तामील की तारीख से तीस दिन के भीतर, हेतुक दर्शित करे कि संगम को विधिविरुद्ध क्यों न घोषित किया जाए ।

(3) अधिकरण, संगम या उसके पदाधिकारियों या सदस्यों द्वारा दर्शित हेतुक पर, यदि कोई हो, विचार करने के पश्चात्, धारा 9 में विनिर्दिष्ट रीति से जांच करेगा और केन्द्रीय सरकार से या संगम के किसी पदाधिकारी या सदस्य से ऐसी अतिरिक्त जानकारी मंगाने के पश्चात्, जैसी वह आवश्यक समझे, यह विनिश्चय करेगा कि संगम को विधिविरुद्ध घोषित करने के लिए पर्याप्त हेतुक है या नहीं, और अधिसूचना में की गई घोषणा की पुष्टि करने वाला या उसे रद्द करने वाला ऐसा आदेश, जैसा वह ठीक समझे, यथासंभव शीघ्रता के साथ तथा किसी भी दशा में, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना निकाले जाने की तारीख से छह मास की कालावधि के भीतर करेगा ।

(4) अधिकरण का उपधारा (3) के अधीन किया गया आदेश शासकीय राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा ।

5. अधिकरण – (1) केन्द्रीय सरकार, जब-जब आवश्यक हो, एक अधिकरण का गठन, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा कर सकेगी जो "विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिकरण" के नाम से ज्ञात होगा और जिसमें एक व्यक्ति होगा, जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाएगी :

परन्तु किसी भी व्यक्ति को ऐसे नियुक्त न किया जाएगा जब तक कि वह किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश न हो ।

(2) यदि अधिकरण के पीठासीन आफिसर के पद में (अस्थायी अनुपस्थिति से भिन्न) कोई रिक्ति किसी भी कारणवश हो जाती है तो केन्द्रीय सरकार उस रिक्ति को भरने के लिए इस धारा के उपबंधों के अनुसार किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करेगी और कार्यवाहियों को

अधिकरण के समक्ष उस प्रक्रम से चालू किया जा सकेगा जिस प्रक्रम पर वह रिक्ति भरी गई ।

(3) केन्द्रीय सरकार, अधिकरण को ऐसा कर्मचारिवृन्द उपलभ्य करेगी जो इस अधिनियम के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक हो ।

(4) अधिकरण के संबंध में उपगत सभी व्यय भारत की संचित निधि में से चुकाए जाएंगे ।

(5) धारा 9 के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, अधिकरण को अपने कृत्यों के निर्वहन से उद्भूत होने वाले सभी मामलों में जिनके अंतर्गत वह स्थान या वे स्थान आते हैं जहां वह अपनी बैठकें करेगा, अपनी प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी ।

(6) इस अधिनियम के अधीन कोई जांच करने के प्रयोजन के लिए अधिकरण की शक्तियां निम्नलिखित विषयों के संबंध में वही होंगी जो किसी वाद का विचारण करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी सिविल न्यायालय में निहित होती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी साक्षी को समन करना और हाजिर कराना, तथा उसकी शपथ पर परीक्षा करना ;

(ख) साक्ष्य के रूप में पेश की जाने योग्य किसी दस्तावेज या अन्य भौतिक पदार्थ का प्रकटीकरण और उसका पेश किया जाना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य लेना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख को मंगाना ;

(ङ) साक्षियों की परीक्षा के लिए कोई कमीशन निकालना ।

(7) अधिकरण के समक्ष की कोई कार्यवाही भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ के अंदर न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी और अधिकरण को [1][संहिता] की धारा 195 और

---

[1] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[1][अध्याय 26] के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

6. अधिसूचना के प्रवृत्त रहने की कालावधि और उसका रद्द किया जाना – (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अध्यधीन यह है कि धारा 3 के अधीन निकाली गई अधिसूचना उस तारीख से, जिस तारीख को वह प्रभावी होती है, [2][पांच वर्ष] की कालावधि के लिए उस दशा में प्रवृत्त रहेगी जिसमें कि अधिकरण, उसमें की गई घोषणा की पुष्टि, धारा 4 के अधीन किए गए आदेश द्वारा कर देता है ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, धारा 3 के अधीन निकाली गई अधिसूचना, या तो स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर, किसी भी समय पर रद्द कर सकेगी, चाहे उसमें की गई घोषणा अधिकरण द्वारा पुष्ट कर दी गई हो या नहीं ।

7. किसी विधिविरुद्ध संगम की निधियों के उपयोग का प्रतिषेध करने की शक्ति – (1) जहां कि धारा 3 के अधीन निकाली गई अधिसूचना द्वारा, जो उस धारा की उपधारा (3) के अधीन प्रभावी हो गई है, कोई संगम विधिविरुद्ध घोषित किया जा चुका है और केन्द्रीय सरकार का ऐसी जांच के पश्चात्, जैसी वह ठीक समझे, समाधान हो गया है कि किसी व्यक्ति की अभिरक्षा में कोई ऐसे धन, प्रतिभूतियां या पावने हैं जो उस विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाए जा रहे हैं या उपयोग में लाए जाने के लिए आशयित हैं वहां, केन्द्रीय सरकार, ऐसे व्यक्ति को, ऐसे धनों, प्रतिभूतियों या पावनों को, या किन्हीं अन्य ऐसे धनों, प्रतिभूतियों या पावनों को, जो उस आदेश के किए जाने के पश्चात् उसकी अभिरक्षा में आएं, केन्द्रीय सरकार के लिखित आदेशों के अनुसार के सिवाय, संदत्त, परिदत्त, या अन्तरित करने या उनसे किसी भी रीति से अन्यथा बरतने से, लिखित आदेश द्वारा, प्रतिषिद्ध कर सकेगी, और ऐसे आदेश की एक प्रति की तामील इस प्रकार प्रतिषिद्ध व्यक्ति पर उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट रीति से की जाएगी ।

---

[1] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 5 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(2) केन्द्रीय सरकार उपधारा (1) के अधीन किए गए प्रतिषेधात्मक आदेश की एक प्रति अन्वेषणार्थ सरकार के किसी ऐसे राजपत्रित आफिसर को पृष्ठांकित कर सकेगी, जिसे वह चुने, और ऐसी प्रति ऐसा अधिपत्र होगी जिसके अधीन ऐसा आफिसर उस व्यक्ति के, जिसे वह आदेश निर्दिष्ट है, किसी परिसर में या उस पर प्रवेश कर सकेगा, ऐसे व्यक्ति की पुस्तकों की परीक्षा कर सकेगा, धनों, प्रतिभूतियों और पावनों के लिए तलाशी ले सकेगा, और किन्हीं ऐसे धनों, प्रतिभूतियों या पावनों में, जिनके बारे में, अन्वेषक आफिसर को संदेह हो कि वे विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाए जा रहे हैं या उपयोग में लाए जाने के लिए आशयित हैं, किए गए किन्हीं व्यौहारों के उद्‌गम के संबंध में ऐसे व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति के किसी आफिसर, अभिकर्ता या सेवक से पूछताछ कर सकेगा ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश की प्रति की तामील, उस रीति से की जाएगी जो समन की तामील के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) में उपबंधित है या जहां कि वह व्यक्ति जिस पर तामील की जानी है, कोई निगम, कंपनी, बैंक या अन्य संगम है, उसकी तामील उसके प्रबंध से संपृक्त किसी सचिव, निदेशक या अन्य आफिसर या व्यक्ति पर की जाएगी या, उस प्रति को निगम, कंपनी, बैंक या अन्य संगम के रजिस्ट्रीकृत कार्यालय में या जहां कि कोई रजिस्ट्रीकृत कार्यालय नहीं है वहां उस स्थान पर, जहां वह कारबार चलाता है, छोड़कर या उसके पते पर डाक द्‌वारा भेज कर की जाएगी ।

(4) उपधारा (1) के अधीन किए गए प्रतिषेधात्मक आदेश से व्यथित व्यक्ति, ऐसे आदेश की तामील की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर, उस जिला न्यायाधीश के न्यायालय में, जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर ऐसा व्यक्ति स्वेच्छया निवास करता है, या कारबार चलाता है, या अभिलाभ के लिए स्वयं कार्य करता है, यह सिद्ध करने के लिए आवेदन कर सकेगा कि जिन धनों, प्रतिभूतियों या पावनों के संबंध में वह प्रतिषेधात्मक आदेश किया गया है वे विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजन के लिए उपयोग में नहीं लाए जा रहे हैं या उपयोग में लाए जाने के लिए आशयित नहीं हैं, और जिला न्यायाधीश का न्यायालय इस प्रश्न का विनिश्चय करेगा ।

(5) उपधारा (2) के अधीन किए गए किसी अन्वेषण के अनुक्रम में अभिप्राप्त कोई भी सूचना, वहां तक के सिवाय जहां तक कि वह इस धारा के अधीन की किन्हीं कार्यवाहियों के प्रयोजनों के लिए आवश्यक हो, सरकार के किसी राजपत्रित आफिसर द्वारा, केन्द्रीय सरकार की सम्मति के बिना, प्रकट नहीं की जाएगी ।

(6) इस धारा में, "प्रतिभूति" के अन्तर्गत ऐसी दस्तावेज आती है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति यह अभिस्वीकार करता है कि वह धन का संदाय करने के लिए किसी वैध दायित्व के अधीन है या जिसके अधीन किसी व्यक्ति को धन के संदाय के लिए कोई वैध अधिकार अभिप्राप्त होता है ।

8. विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाए गए स्थानों को अधिसूचित करने की शक्ति – (1) जहां कि धारा 3 के अधीन निकाली गई किसी अधिसूचना द्वारा, जो उस धारा की उपधारा (3) के अधीन प्रभावी हो गई है, कोई संगम विधिविरुद्ध घोषित किया जा चुका है वहां, केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, किसी ऐसे स्थान को अधिसूचित कर सकेगी जो उसकी राय में ऐसे विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाता है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "स्थान" के अन्तर्गत गृह या निर्माण, या उसका भाग, या तम्बू या जलयान आता है ।

(2) उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना निकलने पर, वह जिला मजिस्ट्रेट, जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर ऐसा अधिसूचित स्थान स्थित है, या उसके द्वारा लिखित रूप में इस निमित्त प्राधिकृत कोई आफिसर (पहिनने के वस्त्रों, रांघने के बर्तनों, चारपाइयों और बिछौना, शिल्पियों के औजारों, खेती के उपकरणों, ढोरों, अनाज और खाद्य पदार्थों तथा अन्य ऐसी वस्तुओं से, जिन्हें वह तुच्छ प्रकृति का समझे भिन्न) उन समस्त जंगम सम्पत्तियों की, जो उस अधिसूचित स्थान में पाई जाएं, एक सूची दो सम्मानित साक्षियों की उपस्थिति में तैयार करेगा ।

(3) यदि सूची में विनिर्दिष्ट कोई वस्तुएं, जिला मजिस्ट्रेट की राय

में, उस विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाई जाती हैं या लाई जा सकती हैं तो वह किसी भी व्यक्ति को उन वस्तुओं का उपयोग, जिला मजिस्ट्रेट के लिखित आदेशों के अनुसार करने के सिवाय, करने से प्रतिषिद्ध करने वाला आदेश कर सकेगा ।

(4) जिला मजिस्ट्रेट तदुपरि यह आदेश कर सकेगा कि कोई भी व्यक्ति जो अधिसूचना की तारीख को उस अधिसूचित स्थान में निवास नहीं करता था, जिला मजिस्ट्रेट की अनुज्ञा के बिना, अधिसूचित स्थान पर या उसमें न तो प्रवेश करेगा, न रहेगा :

परन्तु इस उपधारा में की कोई भी बात, किसी ऐसे व्यक्ति के किसी निकट संबंधी को लागू नहीं होगी जो अधिसूचना की तारीख को, उस अधिसूचित स्थान में निवास करता था ।

(5) जहां कि उपधारा (4) के अनुसरण में किसी व्यक्ति को अधिसूचित स्थान पर या उसमें प्रवेश करने, या रहने की अनुज्ञा दी जाती है वहां वह व्यक्ति ऐसी अनुज्ञा के अधीन कार्य करते समय अपने आचरण के विनियमन के लिए ऐसे आदेशों का अनुपालन करेगा जो जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिए जाएं ।

(6) कोई भी पुलिस आफिसर जो उपनिरीक्षक की पंक्ति से नीचे की पंक्ति का न हो या, केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई अन्य व्यक्ति, अधिसूचित स्थान पर या उसमें प्रवेश करने वाले, या प्रवेश चाहने वाले, किसी व्यक्ति की या किसी ऐसे व्यक्ति की, जो उस पर या उसमें हैं, तलाशी ले सकेगा और ऐसे किसी व्यक्ति को उसकी तलाशी लेने के प्रयोजन के लिए निरुद्ध कर सकेगा :

परन्तु इस उपधारा के अनुसरण में किसी महिला की तलाशी, महिला द्वारा ली जाने के लिए सिवाय, नहीं ली जाएगी ।

(7) यदि उपधारा (4) के अधीन किए गए किसी आदेश के उल्लंघन में कोई व्यक्ति किसी अधिसूचित स्थान में है, तो ऐसी किन्हीं अन्य कार्यवाहियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना जो उसके विरुद्ध की जा सकेंगी, उसे किसी भी आफिसर द्वारा, अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वहां से हटाया जा सकेगा ।

(8) उपधारा (1) के अधीन किसी स्थान के संबंध में निकाली गई अधिसूचना से अथवा उपधारा (3) या उपधारा (4) के अधीन किए गए किसी आदेश से व्यथित व्यक्ति –

(क) यह घोषणा कराने के लिए कि वह स्थान विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजनों के लिए उपयोग में नहीं लाया गया है ; अथवा

(ख) उपधारा (3) या उपधारा (4) के अधीन किए गए आदेश को अपास्त कराने के लिए,

आवेदन, यथास्थिति, अधिसूचना या आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, उस जिला न्यायाधीश के न्यायालय में कर सकेगा जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर ऐसा अधिसूचित स्थान स्थित है, और उस आवेदन के प्राप्त होने पर जिला न्यायाधीश का न्यायालय, पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, उस प्रश्न का विनिश्चय करेगा ।

9. इस अधिनियम के अधीन आवेदनों के निपटारे में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया – ऐसे नियमों के अध्यधीन रहते हुए जो इस अधिनियम के अधीन बनाए जाएं, वह प्रक्रिया जिसका अनुसरण धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन कोई जांच करने में अधिकरण द्वारा, अथवा धारा 7 की उपधारा (4) या धारा 8 की उपधारा (8) के अधीन आवेदन को निपटाने में जिला न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा किया जाता है, यावत्शक्य वही होगा जो दावों के अन्वेषण के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में अधिकथित है, और यथास्थिति, अधिकरण या जिला न्यायाधीश के न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा ।

अध्याय 3
अपराध और शास्तियां

[1][**10. किसी विधिविरुद्ध संगम, आदि का सदस्य होने पर शास्ति** – जहां किसी संगम को धारा 3 के अधीन जारी की गई किसी अधिसूचना द्वारा, जो उस धारा की उपधारा (3) के अधीन प्रभावी हो गई है, विधिविरुद्ध घोषित किया जाता है, वहां, –

---

[1] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 6 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(क) कोई व्यक्ति जो, –

(i) ऐसे संगम का सदस्य है और बना रहता है ; या

(ii) ऐसे संगम के अधिवेशनों में भाग लेता है ; या

(iii) ऐसे संगम के प्रयोजन के लिए अभिदाय करता है या उसके लिए कोई अभिदाय प्राप्त करता है या उसकी इच्छा करता है ; या

(iv) किसी प्रकार ऐसे संगम की संक्रियाओं में सहायता करता है,

कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ; और

(ख) कोई व्यक्ति, जो ऐसे संगम का सदस्य है या बना रहता है या स्वेच्छया ऐसे संगम के उद्देश्यों में किसी रीति से सहायता करने के लिए या उनका संवर्धन करने के लिए कोई कार्य करता है और किसी भी दशा में कोई अननुज्ञप्त अग्न्यायुद्ध, गोलाबारूद, विस्फोटक या अन्य उपस्कर अथवा पदार्थ, जो सामूहिक विनाश कारित करने में समर्थ हो, कब्जे में रखता है और कोई ऐसा कार्य करता है, जिसके परिणामस्वरूप मानव जीवन की हानि होती है या किसी व्यक्ति को गंभीर क्षति होती है या किसी संपत्ति को कोई महत्वपूर्ण नुकसान कारित करता है, –

(i) और यदि ऐसे कार्य के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो वह मृत्यु से या आजीवन कारावास से दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ;

(ii) किसी अन्य दशा में, ऐसी अवधि के कारावास से, जो पांच वर्ष से कम नहीं होगा, किन्तु आजीवन कारावास हो सकेगा, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।]

11. विधिविरुद्ध संगम की निधियों से बरतने के लिए शास्ति – यदि कोई व्यक्ति, जिस पर धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन किन्हीं धनों, प्रतिभूतियों, या पावनों के संबंध में किसी प्रतिषेधात्मक आदेश की

तामील की जा चुकी है, उस प्रतिषेधात्मक आदेश के उल्लंघन में उन्हें संदत्त, परिदत्त, या अन्तरित करेगा या उनसे किसी भी रीति से अन्यथा बरतेगा तो वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडनीय होगा, और [1][संहिता] में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसे उल्लघंन का विचारण करने वाला न्यायालय, दोषसिद्ध व्यक्ति से उन धनों या पावनों की रकमें या उन प्रतिभूतियों का बाजार-मूल्य, जिन के संबंध में प्रतिषेधात्मक आदेश का उल्लंघन किया गया है, या उनका ऐसा भाग, जैसा न्यायालय ठीक समझे, वसूल करने के लिए उस पर अतिरिक्त जुर्माना भी अधिरोपित कर सकेगा ।

12. अधिसूचित स्थान के संबंध में किए गए किसी आदेश के उल्लंघन के लिए शास्ति – (1) जो कोई किसी वस्तु का उपयोग, धारा 8 की उपधारा (3) के अधीन उसके संबंध में किए गए किसी प्रतिषेधात्मक आदेश के उल्लंघन में करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

(2) जो कोई धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन किए गए किसी आदेश के उल्लंघन में जानते हुए और जानबूझकर किसी अधिसूचित स्थान में होगा, या उसमें प्रविष्ट होगा या प्रविष्ट होने का प्रयत्न करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

13. विधिविरुद्ध क्रियाकलाप के लिए दंड – (1) जो कोई –

(क) किसी विधिविरुद्ध क्रिया में भाग लेगा, या ऐसी क्रिया करेगा, अथवा

(ख) किसी विधिविरुद्ध क्रिया के किए जाने का पक्ष समर्थन करेगा, उसका दुष्प्रेरण करेगा, उसकी सलाह देगा या उसके किए जाने को उद्दीप्त करेगा,

---

[1] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

(2) जो कोई धारा 3 के अधीन विधिविरुद्ध घोषित किए गए किसी संगम की किसी विधिविरुद्ध क्रिया में, उस धारा की उपधारा (3) के अधीन उस अधिसूचना के प्रभावी हो जाने के पश्चात्, जिसके द्वारा वह इस प्रकार घोषित किया गया हो, किसी भी प्रकार सहायता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

(3) इस धारा में की कोई बात भारत सरकार और किसी अन्य देश की सरकार के बीच हुई किसी संधि, करार या अभिसमय को, या भारत सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा उसके लिए की जाने वाली किसी बातचीत को लागू नहीं होगी ।

14. अपराधों का संज्ञेय होना – [1][संहिता] में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध संज्ञेय होगा ।

[2][अध्याय 4]
आतंकवादी क्रियाकलापों के लिए दंड

[3][**15. आतंकवादी कार्य** – [4][(1)] जो कोई, भारत की एकता, अखंडता, सुरक्षा, [5][आर्थिक सुरक्षा] या प्रभुता को संकट में डालने या संकट में डालने की संभावना के आशय से या भारत में या किसी विदेश में जनता अथवा जनता के किसी वर्ग में आतंक फैलाने या आतंक फैलाने की संभावना के आशय से –

(क) बमों, डाइनामाइट या अन्य विस्फोटक पदार्थों या ज्वलनशील पदार्थों या अग्न्यायुधों या अन्य प्राणहर आयुधों या

---

[1] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2004 के अधिनियम सं. 29 की धारा 7 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[3] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[4] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 4 द्वारा पुन: संख्यांकित ।

[5] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 4 द्वारा अंत:स्थापित ।

विषों या अपायकर गैसों या अन्य रसायनों या परिसंकटमय प्रकृति के किन्हीं अन्य पदार्थों का (चाहे वे जैविक रेडियोधर्मी, न्यूक्लीयर हों या अन्यथा) या किसी भी प्रकृति के किन्हीं अन्य साधनों का उपयोग करके ऐसा कोई कार्य करता है जिससे, –

(i) किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की मृत्यु होती है या उन्हें क्षति होती है या होने की संभावना है ; या

(ii) संपत्ति की हानि या उसका नुकसान या विनाश होता है या होने की संभावना है ;

(iii) भारत में या किसी विदेश में समुदाय के जीवन के लिए अनिवार्य किन्हीं प्रदायों या सेवाओं में विघ्न कारित होता है या होने की संभावना है ; या

[1][(iiiक) उच्च क्वालिटी के कागज, सिक्के या किसी अन्य सामग्री की कूटकृत भारतीय करेंसी के निर्माण या उसकी तस्करी या परिचालन से भारत की आर्थिक स्थिरता को नुकसान कारित होता है या होने की संभावना है ; या]

(iv) भारत की प्रतिरक्षा या भारत सरकार, किसी राज्य सरकार या उनके किन्हीं अभिकरणों के किन्हीं अन्य प्रयोजनों के संबंध में उपयोग की जाने वाली या उपयोग किए जाने के लिए आशयित भारत में या किसी विदेश में किसी संपत्ति का नुकसान या विनाश होता है या होने की संभावना है ; या

(ख) लोक कृत्यकारियों को आपराधिक बल के द्वारा या आपराधिक बल का प्रदर्शन करके आतंकित करता है या ऐसा करने का प्रयत्न करता है या किसी लोक कृत्यकारी की मृत्यु कारित करता है या किसी लोक कृत्यकारी की मृत्यु कारित करने का प्रयत्न करता है ; या

(ग) किसी व्यक्ति को निरुद्ध करता है, उसका व्यपहरण या अपहरण करता है या ऐसे व्यक्ति को मारने या क्षति पहुंचाने की

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित ।

धमकी देता है या भारत सरकार, किसी राज्य सरकार या किसी विदेश की सरकार [1][किसी अंतरराष्ट्रीय या अंतर-सरकारी संगठन या किसी अन्य व्यक्ति को कोई कार्य करने या किसी कार्य को करने से प्रविरत रहने के लिए बाध्य करने के लिए कोई अन्य कार्य करता है,]

तो वह आतंकवादी कार्य करता है ।

[1][**स्पष्टीकरण** – इस उप धारा के प्रयोजन के लिए, –

(क) "लोक कृत्यकारी" से संवैधानिक प्राधिकारी या केन्द्रीय सरकार द्वारा राजपत्र में लोक कृत्यकारी के रूप में अधिसूचित कोई अन्य कृत्यकारी अभिप्रेत है ;

(ख) "उच्च क्वालिटी की कूटकृत भारतीय करेंसी" से ऐसी कूटकृत करेंसी अभिप्रेत है, जो किसी प्राधिकृत या अधिसूचित न्याय संबंधी प्राधिकारी द्वारा यह परीक्षा करने के पश्चात् कि ऐसी करेंसी तीसरी अनुसूची में यथा विनिर्दिष्ट मुख्य सुरक्षा लक्षणों की अनुकृति है या उसके अनुरूप है, उस रूप में घोषित की जाए ।]

[2][(2) आतंकवादी कार्य के अंतर्गत ऐसा कोई कार्य आता है, जिससे दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट संधियों में से किसी की परिधि के अंतर्गत अपराध गठित होता है और जो उसमें उस रूप में परिभाषित है ।]

16. आतंकवादी कार्य के लिए दंड – जो कोई आतंकवादी कार्य करेगा, वह, –

(क) यदि ऐसे कार्य के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई है तो, मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ;

(ख) किसी अन्य दशा में, ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 4 द्वारा अंत:स्थापित ।

[1]* * * * * * *

[2][**17. आतंकवादी कार्य के लिए निधियां जुटाने के लिए दंड** – जो कोई भारत में या विदेश में, प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से, किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों से, चाहे किसी विधिसम्मत या विधिविरुद्ध स्रोत से, निधियां जुटाता है या निधियां उपलब्ध कराता है या संगृहीत करता है या उपलब्ध कराने का प्रयास करता है अथवा यह जानते हुए कि ऐसी निधियों का ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा या किसी आतंकवादी संगठन द्वारा या किसी आतंकवादी गैंग द्वारा या किसी व्यष्टि आतंकवादी द्वारा कोई आतंकवादी कार्य करने के लिए, पूर्णत: या भागत: उपयोग किए जाने की संभावना है, किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों के लिए, इस बात को विचार में लिए बिना कि ऐसी निधियों का ऐसे कार्य को करने के लिए वस्तुत: प्रयोग किया गया था अथवा नहीं, निधियां जुटाता है या संगृहीत करता है, वह ऐसी अवधि के कारावास से, जो पांच वर्ष से कम की नहीं होगी, किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए, –

(क) इसमें वर्णित किसी भी कार्य में भाग लेने, संगठित होने या उसका संचालन करने से अपराध गठित होगा ;

(ख) निधियां जुटाने के अंतर्गत उच्च क्वालिटी की कूटकृत भारतीय करेंसी के निर्माण या उसकी तस्करी या परिचालन के माध्यम से निधियां जुटाना या संगृहीत करना या उपलब्ध कराना भी है ;

(ग) ऐसे प्रयोजन के लिए, जो विनिर्दिष्टतया धारा 15 के अधीन नहीं आता है, किसी व्यष्टि आतंकवादी, आतंकवादी गैंग या आतंकवादी संगठन के फायदे के लिए या किसी रीति में निधियां

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 5 द्वारा लोप किया गया ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 6 द्वारा प्रतिस्थापित ।

जुटाने या संगृहीत करने या उसको उपलब्ध कराने को भी अपराध समझा जाएगा ।]

18. षड्यंत्र आदि के लिए दंड – जो कोई, कोई आतंकवादी कार्य करने या आतंकवादी कार्य किए जाने की तैयारी का कार्य करने का षड्यंत्र करेगा या प्रयत्न करेगा या उसके किए जाने का पक्षपोषण करेगा, दुष्प्रेरण करेगा, सलाह देगा या [1][उद्दीपन करेगा, निदेश देगा या जानबूझ-कर उसका किया जाना सुकर बनाएगा] वह ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

[2][**18क. आतंकवादी शिविर आयोजित करने के लिए दंड** – जो कोई आतंकवाद में प्रशिक्षण देने के लिए किसी शिविर या शिविरों का आयोजन करेगा या कराएगा, तो वह ऐसी अवधि के कारावास से, जो पांच वर्ष से कम नहीं होगी किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

18ख. आतंकवादी कार्य के लिए किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को भर्ती करने के लिए दंड – जो कोई किसी आतंकवादी कार्य को करने के लिए किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को भर्ती करेगा या कराएगा, तो वह ऐसी अवधि के कारावास से, जो पांच वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा, और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।]

19. संश्रय देने, आदि के लिए दंड – जो कोई, किसी व्यक्ति को यह जानते हुए कि वह व्यक्ति आतंकवादी है, स्वेच्छया संश्रय देगा या छिपाएगा या संश्रय देने या छिपाने का प्रयास करेगा वह ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा :

परंतु यह धारा ऐसे मामले में लागू नहीं होगी, जिसमें संश्रय देने

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 7 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 8 द्वारा अंत:स्थापित ।

या छिपाने का कार्य अपराधी के पति या पत्नी द्वारा किया गया है ।

20. आतंकवादी गैंग या संगठन का सदस्य होने के लिए दंड – कोई व्यक्ति, जो ऐसे किसी आतंकवादी गैंग या किसी आतंकवादी संगठन का सदस्य है, जो आतंकवादी कार्य में संलिप्त है, वह ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

21. आतंकवाद के आगमों को धारित करने के लिए दंड – जो कोई जानबूझकर किसी आतंकवादी कार्य के किए जाने से व्युत्पन्न या अभिप्राप्त की गई या आतंकवादी निधि के माध्यम से अर्जित किसी संपत्ति को धारित करेगा, वह ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

22. साक्षी को धमकी देने के लिए दंड – जो कोई, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो कोई साक्षी है या किसी अन्य व्यक्ति को, जिसमें वह व्यक्ति हितबद्ध हो, हिंसा की धमकी देगा या साक्षी अथवा किसी अन्य व्यक्ति को, जिसमें साक्षी हितबद्ध हो, दोषपूर्वक अवरुद्ध करेगा या परिरुद्ध करेगा या उक्त कार्यों में से किसी कार्य को करने के आशय से कोई अन्य विधिविरुद्ध कार्य करेगा वह ऐसे कारावास से, जो तीन वर्ष तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

[1][**22क. कंपनियों द्वारा अपराध** – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (जिसके अंतर्गत कंपनी के संप्रवर्तक भी हैं), जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को (जिसके अंतर्गत संप्रवर्तक भी हैं) इस अधिनियम में उपबंधित किसी दंड का भागी

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 7 द्वारा अंत:स्थापित ।

नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए समुचित सावधानी बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी संप्रवर्तक, निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा संप्रवर्तक, निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है; और

(ख) किसी फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

22 ख. सोसाइटियों या न्यासों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी सोसाइटी या न्यास द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (जिसके अंतर्गत सोसाइटी का संप्रवर्तक या न्यास का व्यवस्थापक भी है), जो उस अपराध के किए जाने के समय उस सोसाइटी या न्यास के कारबार के संचालन के लिए उस सोसाइटी या न्यास का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह सोसाइटी या न्यास भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को इस अधिनियम में उपबंधित किसी दंड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि वह अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया

था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए समुचित सावधानी बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी सोसाइटी या न्यास द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि अपराध सोसाइटी या न्यास के किसी संप्रवर्तक, निदेशक, प्रबंधक, सचिव, न्यासी या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा संप्रर्वतक, निदेशक, प्रबंधक, सचिव, न्यासी या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए, –

(क) "सोसाइटी" से सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) या सोसाइटियों के रजिस्ट्रीकरण को शासित करने वाले किसी अन्य राज्य अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है;

(ख) "न्यास" से भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 (1882 का 2) या न्यासों के रजिस्ट्रीकरण को शासित करने वाले किसी अन्य राज्य अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई निकाय अभिप्रेत है;

(ग) किसी सोसाइटी या न्यास के संबंध में, "निदेशक" से केंद्रीय या राज्य सरकार या समुचित कानूनी प्राधिकारी के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी पदेन सदस्य से भिन्न उसके शासी बोर्ड का कोई सदस्य अभिप्रेत है ।

22ग. कंपनियों, सोसाइटियों या न्यासों द्वारा अपराधों के लिए दंड – जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, यथास्थिति, किसी कंपनी या किसी सोसाइटी या किसी न्यास द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (जिसके अंतर्गत कंपनी या न्यास का संप्रवर्तक या न्यास का व्यवस्थापक भी है), जो उस अपराध के समय कारबार के संचालन के लिए भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था, ऐसी अवधि के कारावास

के लिए, जो सात वर्ष से कम की नहीं होगी, किंतु आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी, जो पांच करोड़ रुपए से कम का नहीं होगा और जो दस करोड़ रुपए तक का हो सकेगा, दायी होगा ।]

23. वर्धित शास्तियां – (1) [1][यदि कोई व्यक्ति, किसी आतंकवादी या किसी आतंकवादी संगठन या किसी आतंकवादी गैंग की सहायता करने के आशय से] विस्फोटक अधिनियम, 1884 (1884 का 4) या विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 (1908 का 6) या ज्वलनशील पदार्थ अधिनियम, 1952 (1952 का 20) या आयुध अधिनियम, 1959 (1959 का 54) के किसी उपबंध या उनके अधीन बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करेगा या उसने किसी बम, डायनामाइट या परिसंकटमय विस्फोटक पदार्थ या अन्य प्राणहर आयुध या भारी विनाश करने योग्य पदार्थ या [2][युद्धकालीन जैव या रासायनिक पदार्थ या उच्च क्वालिटी की कूटकृत भारतीय करेंसी को] अनधिकृत रूप से अपने कब्जे में रखा हुआ है तो वह पूर्वोक्त अधिनियमों में से किसी अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष से कम नहीं होगी, किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा ।

(2) [1][किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में, जो किसी आतंकवादी या आतंकवादी संगठन या आतंकवादी गैंग की सहायता करने के आशय से] उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी विधि या नियम के किसी उपबंध का उल्लंघन करने का प्रयास या दुष्प्रेरण करेगा या उसके उल्लंघन की तैयारी का कोई कार्य करेगा, यह समझा जाएगा कि उसने उपधारा (1) के अधीन उस उपबंध का उल्लंघन किया है और उस उपधारा के उपबंधों का उस व्यक्ति के संबंध में इस उपांतरण के अधीन रहते हुए प्रभावी होगा कि उसमें "आजीवन कारावास" के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह "दस वर्ष के कारावास" के प्रति निर्देश है ।

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 9 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित ।

अध्याय 5

आतंकवाद के आगमों का [1][या ऐसी किसी संपत्ति का, जिसका उपयोग आतंकवाद के लिए किया जाना आशयित है] समपहरण

[2][**24. आतंकवाद के आगम के प्रति निर्देश के अंतर्गत ऐसी किसी संपत्ति के प्रति, जिसका उपयोग आतंकवाद के लिए किया जाना आशयित है, निर्देश भी होगा** – इस अध्याय में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, "आतंकवाद के आगम" के प्रति सभी निर्देशों के अंतर्गत "ऐसी कोई संपत्ति, जिसका उपयोग आतंकवाद के लिए किया जाना आशयित है," के प्रति निर्देश भी है ।

24क. आतंकवाद के आगमों का समपहरण – (1) कोई भी व्यक्ति आतंकवाद के आगमों को धारण नहीं करेगा या कब्जे में नहीं रखेगा ।

(2) आतंकवाद के आगम, चाहे वे किसी आतंकवादी संगठन या आतंकवादी गैंग द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा रखे गए हों और चाहे ऐसे आतंकवादी संगठन या आतंकवादी गैंग या अन्य व्यक्ति को अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजित या सिद्धदोष ठहराया गया हो अथवा नहीं, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को इस अध्याय के अधीन उपबंधित रीति में, समपहृत किए जाने के दायित्वाधीन होंगे ।

(3) जहां कार्यवाहियां इस धारा के अधीन प्रारंभ की गई हैं, वहां न्यायालय अपराध में, अंतर्वलित आतंकवाद के आगमों के मूल्य के समतुल्य संपत्ति की, यथास्थिति, कुर्की करने या उसका समपहरण करने का निदेश देने संबंधी आदेश पारित कर सकेगा ।]

25. अन्वेषण अधिकारी और अभिहित प्राधिकारी की शक्तियां और अभिहित प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील – (1) यदि अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन किए गए किसी अपराध का अन्वेषण करने वाले किसी अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि कोई संपत्ति, जिसके संबंध में अन्वेषण किया जा रहा है, आतंकवाद के

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 9 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 10 द्वारा प्रतिस्थापित ।

आगमों से है तो वह, उस राज्य के, जिसमें ऐसी संपत्ति स्थित है, पुलिस महानिदेशक के लिखित में पूर्व अनुमोदन से, ऐसी संपत्ति का अभिग्रहण करने का आदेश करेगा और जहां ऐसी संपत्ति को अभिग्रहण करना व्यवहार्य न हो, वहां यह निदेश देते हुए ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश देगा कि उस संपत्ति को, ऐसा आदेश करने वाले अधिकारी या उस अभिहित प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के सिवाय अंतरित नहीं किया जाएगा या अन्यथा कार्यवाही नहीं की जाएगी, जिसके समक्ष अभिगृहीत या कुर्क की गई संपत्ति पेश की जाती है और उस आदेश की एक प्रति संबंधित व्यक्ति को भी भेजी जाएगी ।

(2) अन्वेषण अधिकारी, ऐसी संपत्ति के अभिग्रहण या उसकी कुर्की के अड़तालीस घंटों के भीतर अभिहित प्राधिकारी को उसकी सम्यक् सूचना देगा ।

(3) अभिहित प्राधिकारी, जिसके समक्ष अभिगृहीत या कुर्क की गई संपत्ति पेश की जाती है, ऐसे पेश किए जाने की तारीख से साठ दिन की अवधि के भीतर, इस प्रकार जारी किए गए अभिग्रहण या कुर्की के आदेश की या तो पुष्टि करेगा या उसे प्रतिसंहृत करेगा :

परन्तु उस व्यक्ति को, जिसकी संपत्ति अभिगृहीत या कुर्क की जा रही है अभ्यावेदन देने का अवसर दिया जाएगा ।

(4) अन्वेषण अधिकारी द्वारा कुर्क की गई स्थावर संपत्ति की दशा में, उसे अभिहित प्राधिकारी के समक्ष तब पेश किया गया समझा जाएगा, जब अन्वेषण अधिकारी अपनी रिपोर्ट अधिसूचित करता है और उसे अभिहित प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही किए जाने के लिए रखता है ।

(5) अन्वेषण अधिकारी, ऐसी किसी नकदी को, जिसे यह अध्याय लागू होता है, अभिगृहीत कर सकेगा और उसे प्रतिधृत कर सकेगा, यदि उसके पास यह संदेह करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि –

(क) वह किसी आतंकवाद के प्रयोजनों के संबंध में उपयोग किए जाने के लिए आशयित है ; या

(ख) वह किसी आतंकवादी संगठन का संपूर्ण संसाधन या

उसका भाग बनती है :

परंतु अन्वेषण अधिकारी द्वारा इस उपधारा के अधीन अभिगृहीत की गई नकदी उस समय से, जब उसे अभिगृहीत किया गया था, प्रारंभ होने वाले अड़तालीस घंटों की अवधि के भीतर तब तक निर्मुक्त नहीं की जाएगी, जब तक वह नकदी अंतर्वलित करने वाला मामला अभिहित प्राधिकारी के समक्ष न हो और उस प्राधिकारी ने उसके अड़तालीस घंटों से अधिक की प्रतिधारण के अनुज्ञा देने वाला आदेश न पारित किया हो ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "नकदी" से निम्नलिखित अभिप्रेत हैं –

(क) किसी भी करेंसी में सिक्के या नोट ;

(ख) पोस्टल आर्डर ;

(ग) यात्री चैक ;

[1][(गक) क्रेडिट या डेबिट कार्ड या ऐसे कार्ड जो उनका जैसा प्रयोजन सिद्ध करते हैं ;]

(घ) बैंककार के ड्राफ्ट ; और

(ङ) ऐसी अन्य धन संबंधी लिखतें, जिन्हें यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार लिखित में आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे ।

(6) अभिहित प्राधिकारी के द्वारा किए गए आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश की प्राप्ति की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर, न्यायालय को अपील कर सकेगा और न्यायालय या तो इस प्रकार किए गए संपत्ति की कुर्की या अभिग्रहण के आदेश की पुष्टि कर सकेगा या ऐसे आदेश को प्रतिसंहृत कर सकेगा और संपत्ति को मुक्त कर सकेगा ।

26. न्यायालय द्वारा आतंकवाद के आगमों के समपहरण का आदेश दिया जाना – जहां कोई संपत्ति इस आधार पर अभिगृहीत या कुर्क की गई है कि वह आतंकवाद के आगमों का गठन करती है और न्यायालय धारा 25 की उपधारा (6) के अधीन इस संबंध में आदेश की

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 11 द्वारा प्रतिस्थापित ।

पुष्टि कर देता है, वहां, चाहे उस व्यक्ति को, जिसके कब्जे से इसे अभिगृहीत या कुर्क किया गया है, अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन किसी अपराध के लिए न्यायालय में अभियोजित किया गया हो या नहीं, वह ऐसी संपत्ति के समपहरण का आदेश दे सकेगा ।

27. आतंकवाद के आगमों के समपहरण से पूर्व हेतुक दर्शित करने की सूचना का जारी किया जाना – (1) धारा 26 के अधीन आतंकवाद के किन्हीं आगमों के समपहरण का कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा, जब तक उस व्यक्ति को, जो ऐसे आगमों को धारित करता है या अपने कब्जे में रखता है, उन आधारों की, जिन पर आतंकवाद के आगमों को समपहृत करने का प्रस्ताव किया गया है, उसको जानकारी देने वाली सूचना नहीं दे दी गई है और उस व्यक्ति को, ऐसे युक्तियुक्त समय के भीतर, जो सूचना में विनिर्दिष्ट हो, समपहरण के आधारों के विरुद्ध लिखित में पक्षकथन प्रस्तुत करने का अवसर न दिया गया हो और उसे उस मामले में सुनवाई का अवसर भी न दिया गया हो ।

(2) उपधारा (1) के अधीन समपहरण का कोई आदेश नहीं किया जाएगा, यदि ऐसा व्यक्ति यह सिद्ध कर देता है कि वह ऐसे आगमों का, इस जानकारी के बिना कि वे आतंकवाद के आगमों को दर्शित करते हैं, मूल्य के लिए सद्भावी अंतरिती हैं ।

(3) अभिगृहीत या कुर्क की गई संपत्ति के संबंध में न्यायालय के लिए, –

(क) उसका विक्रय किए जाने का निदेश देने वाला आदेश करना समुचित होगा, यदि वह विनश्वर संपत्ति है और संहिता की धारा 459 के उपबंध, जहां तक व्यवहार्य हों, ऐसे विक्रय के शुद्ध आगमों को लागू होंगे ;

(ख) किसी अन्य संपत्ति की दशा में, ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं, ऐसी संपत्ति के प्रशासक के कृत्य का पालन करने के लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी अधिकारी का नामनिर्देशन करने वाला आदेश करना समुचित होगा ।

28. अपील – (1) धारा 26 के अधीन समपहरण के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, ऐसे आदेश की प्राप्ति की तारीख से एक मास के भीतर, उस उच्च न्यायालय को अपील कर सकेगा, जिसकी अधिकारिता के भीतर वह न्यायालय स्थित है, जिसने ऐसा आदेश पारित किया था, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(2) जहां धारा 26 के अधीन किसी आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा उपांतरित या बातिल किया जाता है या जहां अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन किसी अपराध के लिए संस्थित किए गए किसी अभियोजन में, उस व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध धारा 26 के अधीन समपहरण का आदेश किया गया है, दोषमुक्त कर दिया जाता है, वहां ऐसी संपत्ति उसे वापस कर दी जाएगी और किसी भी दशा में, यदि किसी कारणवश समपहृत संपत्ति को वापस करना संभव नहीं है तो उस व्यक्ति को संपत्ति के समपहरण की तारीख से संगणित किए गए युक्तियुक्त ब्याज के साथ उसके लिए कीमत इस प्रकार संदत्त की जाएगी, मानो, संपत्ति का केन्द्रीय सरकार को विक्रय कर दिया गया हो और ऐसी कीमत का अवधारण विहित रीति में किया जाएगा ।

29. समपहरण के आदेश का अन्य दंडों में बाधा न डालना – न्यायालय द्वारा इस भाग के अधीन किया गया समपहरण का आदेश किसी अन्य दंड के, जिसके लिए उससे प्रभावित व्यक्ति अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन दायी है, अधिरोपण को निवारित नहीं करेगा ।

30. तीसरे पक्षकार द्वारा दावे – (1) जहां धारा 25 के अधीन किसी संपत्ति के समपहरण या उसकी कुर्की के संबंध में कोई दावा इस आधार पर किया जाता है कि ऐसी संपत्ति समपहरण या कुर्की के लिए दायी नहीं है वहां अभिहित प्राधिकारी, जिसके समक्ष ऐसी संपत्ति पेश की गई है, दावे या आक्षेप का अन्वेषण करने की कार्यवाही करेगा :

परन्तु ऐसा कोई अन्वेषण वहां नहीं किया जाएगा, जहां अभिहित प्राधिकारी यह समझता है कि दावा या आक्षेप अनावश्यक विलंब कराने के लिए अभिकल्पित किया गया है ।

(2) जहां धारा 25 की उपधारा (6) के अधीन कोई अपील की गई

है और दावाकर्ता या आक्षेपकर्ता यह साबित कर देता है कि धारा 27 के अधीन जारी की गई सूचना में विनिर्दिष्ट संपत्ति, इस अध्याय के अधीन समपहृत किए जाने के लिए दायी नहीं है तो उक्त सूचना को वापस ले लिया जाएगा या तद्नुसार उसे उपांतरित किया जाएगा ।

31. अभिहित प्राधिकारी की शक्तियां – इस अध्याय के उपबंधों के अधीन कार्य करने वाले अभिहित प्राधिकारी को उसके समक्ष मामले में पूर्व और उचित जांच करने के लिए अपेक्षित सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी ।

32. कतिपय अंतरणों का अकृत और शून्य होना – जहां, धारा 25 के अधीन किसी आदेश के जारी किए जाने या धारा 27 के अधीन किसी सूचना के जारी किए जाने के पश्चात् उक्त आदेश या सूचना में निर्दिष्ट कोई संपत्ति किसी भी प्रकार की रीति से अंतरित कर दी जाती है, वहां ऐसे अंतरण पर, इस अध्याय के अधीन कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए, ध्यान नहीं दिया जाएगा और यदि ऐसी संपत्ति तत्पश्चात् समपहृत कर ली जाती है तो ऐसी संपत्ति के ऐसे अंतरण को अकृत और शून्य समझा जाएगा ।

33. कतिपय व्यक्तियों की संपत्ति का समपहरण – (1) जहां कोई व्यक्ति, अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन किसी अपराध का अभियुक्त है, वहां न्यायालय ऐसा कोई आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र होगा कि उसकी जंगम या स्थावर या दोनों प्रकार की सभी या उनमें से कोई संपत्ति, यदि इस अध्याय के अधीन पहले ही कुर्क नहीं की गई है तो ऐसे विचारण के दौरान, कुर्क कर ली जाएं ।

(2) जहां किसी व्यक्ति को अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन दंडनीय किसी अपराध या सिद्धदोष ठहराया गया है, वहां न्यायालय, कोई दंड देने के अतिरिक्त, लिखित में आदेश द्वारा यह घोषित कर सकेगा कि अभियुक्त की, जंगम या स्थावर या दोनों प्रकार की कोई संपत्ति, जो आदेश में विनिर्दिष्ट हो, सभी विल्लंगमों से मुक्त रूप में, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को समपहृत हो जाएगी ।

[1][(3) जहां कोई व्यक्ति उच्च क्वालिटी की कूटकृत भारतीय करेंसी से संबधित किसी अपराध का अभियुक्त है, वहां न्यायालय अपराध में अंतर्वलित ऐसी उच्च क्वालिटी की कूटकृत भारतीय करेंसी के मूल्य के, जिसके अंतर्गत ऐसी करेंसी का अंकित मूल्य भी है ; जो उच्च क्वालिटी का होने के रूप में परिभाषित नहीं है, किंतु जो उच्च क्वालिटी की कूटकृत भारतीय करेंसी के साथ सामान्य अभिग्रहण के भागरूप है, समतुल्य संपत्ति की, यथास्थिति, कूर्की करने या उसका समपहरण करने का निदेश देने संबंधी आदेश पारित कर सकेगा ।

(4) जहां कोई व्यक्ति, अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का अभियुक्त है, वहां न्यायालय अपराध में अंतर्वलित आतंकवाद के आगमों के मूल्य के समतुल्य संपत्ति की, यथास्थिति, कुर्की करने या उसका समपहरण करने का निदेश देने संबंधी आदेश पारित कर सकेगा ।

(5) जहां कोई व्यक्ति, अध्याय 4 या अध्याय 6 के अधीन किसी अपराध का अभियुक्त है, वहां न्यायालय इस आशय का आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र होगा कि उसकी जंगम या स्थावर या दोनों प्रकार की सभी संपत्ति का या उनमें से किसी का, जहां इस अधिनियम के अधीन विचारण अभियुक्त की मृत्यु के कारण या उसे उद्घोषित अपराधी घोषित कर दिए जाने के कारण या किसी अन्य कारणवश समाप्त नहीं हो सकता, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत तात्विक साक्ष्य के आधार पर अधिहरण कर लिया जाए ।]

34. कंपनी द्वारा सरकार को शेयरों का अंतरण करना – जहां किसी कंपनी में कोई शेयर इस अध्याय के अधीन, यथास्थित, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को समपहृत हो गया है, वहां कंपनी, न्यायालय के आदेश की प्राप्ति पर, कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) में या कंपनी के संगम अनुच्छेदों में किसी बात के होते हुए भी, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को ऐसे शेयरों के अंतरिति के रूप में तुरन्त रजिस्टर करेगी ।

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 11 द्वारा अंत:स्थापित ।

अध्याय 6
आतंकवादी संगठन

35. अनुसूची, आदि का संशोधन – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में [1][अधिसूचना] द्वारा –

(क) [1][पहली अनुसूची] में किसी संगठन को जोड़ सकेगी ; या

(ख) [1][पहली अनुसूची] में किसी ऐसे संगठन को भी जोड़ सकेगी, जिसके बारे में यह पता चलता है कि वह अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का सामना करने के लिए, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अध्याय 7 के अधीन सुरक्षा परिषद् द्वारा अंगीकृत संकल्प में आतंकवादी संगठन है ; या

(ग) [1][पहली अनुसूची] से किसी संगठन को हटा सकेगी ; या

(घ) [1][पहली अनुसूची] का किसी अन्य रूप में संशोधन कर सकेगी ।

(2) केन्द्रीय सरकार किसी संगठन के संबंध में उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग तभी कर सकेगी, जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि वह आतंकवाद में संलिप्त है ।

(3) उपधारा (2) के प्रयोजनों के लिए, किसी संगठन को आतंकवाद में संलिप्त समझा जाएगा यदि वह –

(क) आतंकवादी कार्य करता है या उसमें भाग लेता है ;

(ख) आतंकवाद के लिए तैयारी करता है ;

(ग) आतंकवाद में अभिवृद्धि करता है या उसे बढ़ावा देता है ; या

(घ) अन्यथा आतंकवाद में संलिप्त है ।

[2][(4) केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, दूसरी अनुसूची या तीसरी अनुसूची में जोड़ सकेगी या उससे हटा सकेगी या उसमें

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 12 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 12 द्वारा अंत:स्थापित ।

संशोधन कर सकेगी और इस प्रकार, यथास्थिति, दूसरी अनुसूची या तीसरी अनुसूची तद्नुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(5) उपधारा (1) या उपधारा (4) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना, उसके जारी किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के समक्ष रखी जाएगी ।]

36. किसी आतंकवादी संगठन को अधिसूचना से निकाला जाना – (1) किसी संगठन को अनुसूची से हटाने के लिए धारा 35 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए कोई आवेदन केन्द्रीय सरकार को किया जा सकेगा ।

(2) कोई आवेदन, –

(क) संगठन द्वारा ; या

(ख) संगठन को किसी आतंकवादी संगठन के रूप में अनुसूची में सम्मिलित किए जाने से प्रभावित किसी व्यक्ति द्वारा, किया जा सकेगा ।

(3) केन्द्रीय सरकार, इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन को ग्रहण करने या उसके निपटारे की प्रक्रिया विहित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(4) जहां उपधारा (1) के अधीन कोई आवेदन नामंजूर कर दिया गया है, वहां आवेदक, धारा 37 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित पुनर्विलोकन समिति को, आवेदक द्वारा ऐसी नामंजूरी के आदेश की प्राप्ति की तारीख से एक मास के भीतर, पुनर्विलोकन के लिए, आवेदन कर सकेगा ।

(5) पुनर्विलोकन समिति, अनुसूची से किसी संगठन को हटाने से इनकार के विरुद्ध पुनर्विलोकन के लिए आवेदन को मंजूर कर सकेगी, यदि उसका यह विचार है कि नामंजूर करने का विनिश्चय, जब उस पर न्यायिक पुनर्विलोकन के किसी आवेदन के संबंध में लागू सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर विचार किया गया था, दोषपूर्ण था ।

(6) जहां पुनर्विलोकन समिति, किसी संगठन द्वारा या उसके संबंध

में उपधारा (5) के अधीन पुनर्विलोकन मंजूर करती है वहां वह उस आशय का कोई आदेश कर सकेगी ।

(7) जहां उपधारा (6) के अधीन कोई आदेश किया जाता है, वहां केन्द्रीय सरकार, उसके द्वारा आदेश की प्रति प्राप्त करने पर, यथासंभवशीघ्र, संगठन को अनुसूची से हटाने का आदेश करेगी ।

37. पुनर्विलोकन समिति – (1) केन्द्रीय सरकार, धारा 36 के प्रयोजनों के लिए एक या अधिक पुनर्विलोकन समितियां गठित करेगी ।

(2) ऐसी प्रत्येक समिति में अध्यक्ष और तीन से अनधिक और ऐसी अर्हताएं रखने वाले उतने अन्य सदस्य होंगे, जितने विहित किए जाएं ।

(3) समिति का अध्यक्ष, ऐसा व्यक्ति होगा, जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा और किसी आसीन न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में, संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति अभिप्राप्त की जाएगी ।

38. किसी आतंकवादी संगठन की सदस्यता से संबंधित अपराध – (1) कोई व्यक्ति, जो स्वयं को किसी आतंकवादी संगठन से सहबद्ध करता है या उसके क्रियाकलापों को अग्रसर करने के आशय से उसके साथ सहबद्ध होने की घोषणा करता है, किसी आतंकवादी संगठन की सदस्यता से संबंधित कोई अपराध कारित करता है :

परन्तु यह उपधारा वहां लागू नहीं होगी, जहां आरोपित व्यक्ति यह साबित करने में समर्थ है कि –

(क) संगठन को उस समय आतंकवादी संगठन के रूप में घोषित नहीं किया गया था, जब वह सदस्य बना था या उसने सदस्य बनने की घोषणा की थी ; और

(ख) उसने, संगठन को आतंकवादी संगठन के रूप में अनुसूची में सम्मिलित किए जाने के दौरान किसी भी समय उसके क्रियाकलापों में भाग नहीं लिया है ।

(2) कोई व्यक्ति, जो उपधारा (1) के अधीन किसी आतंकवादी संगठन की सदस्यता से संबंधित अपराध कारित करता है, ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष से अधिक नहीं हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दंडनीय होगा ।

39. किसी आतंकवादी संगठन को दिए गए समर्थन से संबंधित अपराध – (1) कोई व्यक्ति, किसी आतंकवादी संगठन को समर्थन दिए जाने से संबंधित अपराध करता है, –

(क) जो, आतंकवादी संगठन के क्रियाकलाप को अग्रसर करने के आशय से, –

(i) आतंकवादी संगठन के लिए समर्थन आमंत्रित करता है ; और

(ii) ऐसा समर्थन, धारा 40 के अर्थान्तर्गत धन या अन्य संपत्ति की व्यवस्था करने के लिए नहीं है या उसी तक निर्बंधित नहीं है ; या

(ख) जो, आतंकवादी संगठन के क्रियाकलाप को अग्रसर करने के आशय से, किसी ऐसी बैठक की व्यवस्था या प्रबंध करता है या बैठक की व्यवस्था या प्रबंध करने में सहायता करता है, जिसके बारे में वह यह जानता है कि वह, –

(i) आतंकवादी संगठन के समर्थन के लिए है ; या

(ii) आतंकवादी संगठन के क्रियाकलाप को अग्रसर करने के लिए है ; या

(iii) उसे ऐसे व्यक्ति द्वारा संबोधित किया जाना है, जो किसी आतंकवादी संगठन से सहबद्ध है या सहबद्ध होने की घोषणा करता है ; या

(ग) जो, किसी आतंकवादी संगठन के क्रियाकलाप को अग्रसर करने के आशय से आतंकवादी संगठन के लिए समर्थन को प्रोत्साहित करने के प्रयोजन के लिए या उसके क्रियाकलाप को अग्रसर करने के लिए किसी बैठक को संबोधित करता है ।

(2) कोई व्यक्ति, जो उपधारा (1) के अधीन किसी आतंकवादी संगठन को दिए गए समर्थन से संबंधित अपराध करता है, ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष से अधिक नहीं होगी या जुर्माने से या दोनों से दंडनीय होगा ।

40. किसी आतंकवादी संगठन के लिए निधि जुटाने का अपराध – (1) कोई व्यक्ति किसी आतंकवादी संगठन के लिए निधि जुटाने का अपराध करता है, जो आतंकवादी संगठन के क्रियाकलाप को अग्रसर करने के आशय से, –

(क) अन्य व्यक्ति को, धन या अन्य संपत्ति उपलब्ध कराने का आमंत्रण देता है और यह आशय रखता है कि उसका उपयोग किया जाना चाहिए या यह संदेह करने का युक्तियुक्त कारण रखता है कि उसका उपयोग आतंकवाद के प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है ; या

(ख) धन और अन्य संपत्ति प्राप्त करता है और यह आशय रखता है कि उसका उपयोग किया जाना चाहिए या यह संदेह करने का युक्तियुक्त कारण रखता है कि उसका उपयोग आतंकवाद के प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है ; या

(ग) धन या अन्य संपत्ति उपलब्ध कराता है और यह जानता है या यह संदेह करने का युक्तियुक्त कारण रखता है कि उसका उपयोग आतंकवाद के प्रयोजनों के लिए किया जाएगा या किया जा सकता है ।

[1][**स्पष्टीकरण** – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, धन या अन्य संपत्ति उपलब्ध कराने के प्रति निर्देश के अंतर्गत –

(क) उसका दिया जाना, उधार दिया जाना या उसे अन्यथा उपलब्ध कराना भी है, चाहे प्रतिफल के लिए हो या नहीं ; या

(ख) उच्च क्वालिटी की कूटकृत भारतीय करेंसी के निर्माण या उसकी तस्करी या उसके परिचालन के माध्यम से निधियां जुटाना, संगृहीत करना या उपलब्ध कराना भी है ।]

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 13 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(2) कोई व्यक्ति, जो उपधारा (1) के अधीन किसी आतंकवादी संगठन के लिए निधि जुटाने का अपराध करता है, ऐसे कारावास से, जिसकी अवधि चौदह वर्ष से अधिक नहीं होगी, या जुर्माने से या दोनों से, दंडनीय होगा ।

अध्याय 7
प्रकीर्ण

41. संगम का बने रहना – किसी संगम के बारे में, केवल उसके विघटन या नाम परिवर्तन के किसी औपचारिक कार्य के कारण यह नहीं समझा जाएगा कि वह विद्यमान नहीं रहा है, किन्तु वह तब तक विद्यमान बना रहा समझा जाएगा जब तक उसके किन्हीं सदस्यों के बीच ऐसे संगम के प्रयोजनों के लिए वास्तविक मेल बना रहता है ।

42. प्रत्यायोजन की शक्ति – केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह निदेश दे सकेगी कि ऐसी सभी या किसी शक्ति का, जो धारा 7 या धारा 8 या दोनों धाराओं के अधीन उसके द्वारा प्रयोग की जाती है, ऐसी परिस्थितियों में और ऐसी दशाओं के अधीन, यदि कोई है, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, राज्य सरकार द्वारा भी प्रयोग किया जाएगा और राज्य सरकार, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, लिखित में आदेश द्वारा यह निदेश दे सकेगी कि ऐसी शक्ति का, जिसका उसके द्वारा प्रयोग किए जाने का निदेश दिया गया है, ऐसी परिस्थितियों में और ऐसी दशाओं के अधीन, यदि कोई है, जो निदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, राज्य सरकार के अधीनस्थ किसी व्यक्ति द्वारा, जो उसमें विनिर्दिष्ट हो, प्रयोग किया जा सकेगा ।

43. अध्याय 4 और अध्याय 6 के अधीन अपराधों का अन्वेषण करने के लिए सक्षम प्राधिकारी – संहिता में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसा कोई पुलिस अधिकारी, जो –

(क) दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) की धारा 2 की उपधारा (1) के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन की दशा में, पुलिस उपायुक्त की पंक्ति से नीचे का या समतुल्य पंक्ति का पुलिस अधिकारी है ;

(ख) मुम्बई, कोलकाता, चैन्नई और अहमदाबाद के महानगर क्षेत्रों में और संहिता की धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन उस रूप में अधिसूचित किसी अन्य महानगर क्षेत्र में, सहायक पुलिस आयुक्त की पंक्ति से नीचे का है ;

(ग) किसी भी दशा में, जो खंड (क) या खंड (ख) से संबंधित नहीं है, पुलिस उप अधीक्षक से नीचे का या समतुल्य पंक्ति का पुलिस अधिकारी है,

अध्याय 4 और अध्याय 6 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का अन्वेषण नहीं करेगा ।

[1][**43क. गिरफ्तार करने, तलाशी लेने, आदि की शक्ति** – अभिहित प्राधिकरण का ऐसा कोई अधिकारी, जो, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त सशक्त किया गया है, इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध को कारित करने की योजना के संबंध में जानकारी रखता है या जिसके पास व्यक्तिगत जानकारी या किसी व्यक्ति द्वारा दी गई और लिखित में ली गई ऐसी सूचना पर यह विश्वास करने का कारण है कि किसी व्यक्ति ने इस अधिनियम के अधीन कोई दंडनीय अपराध किया है या कोई दस्तावेज, वस्तु या ऐसी अन्य चीज जो ऐसे अपराध के किए जाने का साक्ष्य दे सकेगी, या कोई अवैध रूप से अर्जित संपत्ति या ऐसे दस्तावेज या अन्य वस्तु, जो किसी अवैध रूप से अर्जित संपत्ति के धारण का साक्ष्य दे सकेगी, जो इस अध्याय के अधीन अभिग्रहण किए जाने या रोक लगाए जाने या समपहरण किए जाने के लिए दायी है, किसी भवन, वाहन या स्थान में रखी गई है या छिपाई गई है, तो वह अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को ऐसे किसी व्यक्ति को, चाहे दिन में या रात में, गिरफ्तार करने या ऐसे किसी भवन, वाहन या स्थान की तलाशी लेने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा या स्वयं ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकेगा या ऐसे किसी भवन, वाहन या स्थान की तलाशी ले सकेगा ।

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 12 द्वारा अंत:स्थापित ।

43ख. गिरफ्तारी, अभिग्रहण, आदि की प्रक्रिया – (1) धारा 43क के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने वाला कोई अधिकारी, यथासंभवशीघ्र उसे ऐसी गिरफ्तारी के आधारों की सूचना देगा ।

(2) धारा 43क के अधीन गिरफ्तार प्रत्येक व्यक्ति और अभिगृहीत वस्तु को बिना किसी अनावश्यक विलंब के निकटतम पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को अग्रेषित किया जाएगा ।

(3) ऐसा प्राधिकारी या अधिकारी, जिसे उपधारा (2) के अधीन कोई व्यक्ति या वस्तु अग्रेषित की गई है, सब सुविधापूर्ण शीघ्रता से ऐसे उपाय करेगा जो संहिता के उपबंधों के अनुसार आवश्यक हों ।

43ग. संहिता के उपबंधों का लागू होना – संहिता के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों के असंगत न हों, इस अधिनियम के अधीन की गई सभी गिरफ्तारियों, तलाशियों और अभिग्रहणों को लागू होंगे ।

43घ. संहिता के कतिपय उपबंधों का उपांतरित रूप में लागू होना – (1) संहिता या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संहिता की धारा 2 के खंड (ग) के अर्थ के भीतर संज्ञेय अपराध समझा जाएगा और उस खंड में यथापरिभाषित "संज्ञेय मामला" का तद्नुसार अर्थ लगाया जाएगा ।

(2) संहिता की धारा 167 ऐसे किसी मामले के संबंध में, जिसमें इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध अंतर्वलित है, इस उपांतरण के अधीन रहते हुए लागू होगी कि उपधारा (2) में –

(क) "पन्द्रह दिन", "नब्बे दिन" और "साठ दिन" के प्रतिनिर्देशों का, जहां कहीं वे आते हैं, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे क्रमश: "तीस दिन", "नब्बे दिन" और "नब्बे दिन" के प्रतिनिर्देश है ; और

(ख) परंतुक के पश्चात् निम्नलिखित परंतुक अंत:स्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :–

"परंतु यह और कि यदि नब्बे दिन की उक्त अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करना संभव नहीं है तो न्यायालय, यदि वह लोक

अभियोजक की अन्वेषण की प्रगति और नब्बे दिनों की उक्त अवधि से परे, अभियुक्त को निरुद्ध रखने के लिए विनिर्दिष्ट कारणों को उपदर्शित करने वाली रिपोर्ट से संतुष्ट है, उक्त अवधि को एक सौ अस्सी दिन तक विस्तारित कर सकेगा :

परंतु यह भी कि यदि इस अधिनियम के अधीन अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए, न्यायिक अभिरक्षा में स्थित किसी व्यक्ति को न्यायिक अभिरक्षा से पुलिस अभिरक्षा में सौंपने का अनुरोध करता है तो वह ऐसा करने के कारणों का कथन करते हुए एक शपथपत्र फाइल करेगा और ऐसी पुलिस अभिरक्षा का अनुरोध करने के लिए किसी विलंब, यदि कोई हो, को भी स्पष्ट करेगा ।" ।

(3) संहिता की धारा 268 ऐसे किसी मामले के संबंध में जिसमें इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध अंतर्वलित है, इस उपांतरण के अधीन रहते हुए लागू होगी कि –

(क) उसकी उपधारा (1) में, –

(i) "राज्य सरकार" के प्रतिनिर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह "केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार" के प्रतिनिर्देश है ;

(ii) "राज्य सरकार के आदेश" के प्रतिनिर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह "यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के आदेश" के प्रतिनिर्देश है ; और

(ख) उसकी उपधारा (2) में "राज्य सरकार" के प्रतिनिर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह "यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार" के प्रतिनिर्देश है ।

(4) संहिता की धारा 438 में की कोई बात, किसी ऐसे मामले के संबंध में लागू नहीं होगी जिसमें किसी ऐसे अभियुक्त व्यक्ति की गिरफ्तारी अंतर्वलित है, जिसने इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध किया है ।

(5) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अध्याय 4 और अध्याय 6 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का अभियुक्त कोई व्यक्ति, यदि वह अभिरक्षा में है, जमानत पर या अपने ही बंधपत्र पर तब तक नहीं छोड़ा जाएगा जब तक लोक अभियोजक को ऐसे छोड़े जाने के लिए आवेदन पर सुनवाई का अवसर न दे दिया गया हो :

परन्तु ऐसा अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर या अपने ही बंधपत्र पर छोड़ा नहीं जाएगा यदि न्यायालय की केस डायरी या संहिता की धारा 173 के अधीन दी गई रिपोर्ट के परिशीलन पर यह राय है कि वह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध अभियोग प्रथमदृष्ट्या सही है ।

(6) उपधारा (5) में विनिर्दिष्ट जमानत मंजूर किए जाने पर निर्बंधन, संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन जमानत मंजूर करने संबंधी निर्बंधनों के अतिरिक्त हैं ।

(7) उपधारा (5) और उपधारा (6) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई जमानत इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को अतिआपवादिक परिस्थितियों में के सिवाय और ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएं, मंजूर नहीं की जाएगी, यदि वह भारत का नागरिक नहीं है और उसने देश में अप्राधिकृत रूप से या अवैध-रूप से प्रवेश किया है ।

43ङ. धारा 15 के अधीन अपराधों के बारे में उपधारणा – धारा 15 के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजन में, यदि यह साबित हो जाता है कि –

(क) उक्त धारा में विनिर्दिष्ट आयुध या विस्फोटक या कोई अन्य पदार्थ अभियुक्त के कब्जे से बरामद किए गए थे और यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसे आयुध या उसी प्रकृति के विस्फोटक या अन्य पदार्थ ऐसे अपराध को कारित करने में प्रयोग किए गए थे ; या

(ख) विशेषज्ञ के साक्ष्य द्वारा, अभियुक्त व्यक्ति की अंगुली

छाप या ऐसा कोई अन्य निश्चित साक्ष्य जिससे अभियुक्त के अपराध में अंतर्वलित होने का संकेत मिलता है, अपराध स्थल पर या किसी अन्य वस्तु पर या जिसके अंतर्गत ऐसे अपराध के किए जाने के संबंध में उपयोग किए गए आयुध और यान भी हैं, पाया गया था,

तो न्यायालय, जब तक इसके प्रतिकूल दर्शित न किया गया हो, यह उपधारणा करेगा कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है ।

43च. सूचना देने की बाध्यता – (1) किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का अन्वेषण करने वाला अधिकारी, पुलिस अधीक्षक से अनिम्न पंक्ति के किसी अधिकारी के लिखित पूर्व अनुमोदन से, केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी या किसी बैंक या किसी कंपनी या किसी फर्म या किसी अन्य संस्था, स्थापन, संगठन के किसी अधिकारी या प्राधिकारी या किसी व्यष्टि से मुद्दों या विषयों पर ऐसे अपराध के संबंध में उसके कब्जे में की ऐसी जानकारी देने की अपेक्षा कर सकेगा जहां अन्वेषण करने वाले अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसी सूचना इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोगी या उनसे सुसंगत होगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन मांगी गई जानकारी देने में असफल रहना या जानबूझकर मिथ्या जानकारी देना, कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से, दंडनीय होगा ।

(3) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (2) के अधीन किसी अपराध का विचारण संक्षिप्त मामले के रूप में किया जाएगा और उक्त संहिता के अध्याय 21 में [धारा 262 की उपधारा (2) के सिवाय] विहित प्रक्रिया उसको लागू होगी ।]

44. साक्षियों का संरक्षण – (1) इस संहिता में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों लिखित में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, यदि न्यायालय ऐसा चाहे तो, बंद कमरे में की जा सकेंगी ।

(2) यदि न्यायालय का, उसके समक्ष किसी कार्यवाही में किसी साक्षी द्वारा या ऐसे साक्षी के संबंध में लोक अभियोजक द्वारा किए गए आवेदन पर या स्वप्रेरणा से यह समाधान हो जाता है कि ऐसे साक्षी का जीवन खतरे में है तो वह, लिखित में, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, ऐसे साक्षी की पहचान और पता गुप्त रखने वाला ऐसा उपाय कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

(3) विशिष्टतया और उपधारा (2) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उन उपायों में, जिन्हें न्यायालय उस उपधारा के अधीन कर सकेगा, निम्नलिखित सम्मिलित हो सकेंगे –

(क) उस स्थान पर कार्यवाहियों का किया जाना, जिसका विनिश्चय न्यायालय द्वारा किया जाएगा ;

(ख) अपने आदेशों या निर्णयों या मामले के किन्हीं अन्य अभिलेखों में, जो जनता तक पहुंच योग्य हैं, साक्षियों के नाम और पते के उल्लेख से बचना ;

(ग) यह सुनिश्चित करने के लिए कोई निदेश जारी करना कि साक्षियों की पहचान और पता प्रकट नहीं किए जाते हैं ;

(घ) यह विनिश्चय कि ऐसा आदेश करना लोक हित में है कि ऐसे न्यायालय के समक्ष लंबित सभी या कोई कार्यवाही किसी रीति में प्रकाशित नहीं की जाएगी ।

(4) कोई व्यक्ति जो उपधारा (3) के अधीन जारी किए गए किसी विनिश्चय या निदेश का उल्लंघन करेगा, कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

45. अपराधों का संज्ञान – [1][(1)] कोई न्यायालय, –

(i) अध्याय 3 के अधीन, केन्द्रीय सरकार या इस निमित्त केन्द्रीय सरकार द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य अधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना ;

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 13 द्वारा पुन:संख्यांकित ।

(ii) अध्याय 4 और अध्याय 6 के अधीन, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना और जहां ऐसा अपराध किसी विदेशी सरकार के विरुद्ध किया जाता है, वहां केन्द्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना, किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा ।

[1][(2) उपधारा (1) के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त ऐसे प्राधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् ही ऐसे समय के भीतर दी जाएगी, जो विहित किया जाए जो अन्वेषण के अनुक्रम में एकत्रित साक्ष्य का स्वतंत्र रूप से पुनर्विलोकन करेगा और, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को ऐसे समय के भीतर, जो विहित किया जाए, सिफारिश करेगा ।]

46. संसूचनाओं के अंतर्रोधन के माध्यम से संगृहीत साक्ष्य की ग्राह्यता – भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) या सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अधीन तार, इलैक्ट्रोनिक या मौखिक संसूचना के अंतर्रोधन के माध्यम से संगृहीत साक्ष्य, किसी मामले के विचारण के दौरान किसी न्यायालय में अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगा :

परंतु अंतर्रोधित किसी तार, इलैक्ट्रोनिक या मौखिक संसूचना की अंतर्वस्तु या उससे व्युत्पन्न साक्ष्य किसी न्यायालय में किसी विचारण, सुनवाई या अन्य कार्यवाही में तब तक साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया जाएगा या अन्यथा प्रकट नहीं किया जाएगा जब तक कि प्रत्येक अभियुक्त को उस पूर्वोक्त विधि के अधीन, जिसके अधीन, अंतर्रोधन का निर्देश किया गया था, सक्षम प्राधिकारी के आदेश की प्रति, विचारण, सुनवाई या कार्यवाही के कम से कम दस दिन पूर्व न दे दी गई हो :

परंतु यह और कि मामले का विचारण कर रहे न्यायाधीश द्वारा

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 13 द्वारा अंत:स्थापित ।

दस दिन की अवधि का अधित्याग किया जा सकेगा, यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विचारण, सुनवाई या कार्यवाही के दस दिन पूर्व ऐसा आदेश अभियुक्त को दिया जाना संभव नहीं था और ऐसे आदेश के प्राप्त करने में विलंब से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

47. अधिकारिता का वर्जन – (1) इस अधिनियम में जैसा अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है उसके सिवाय इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार या जिला मजिस्ट्रेट या केन्द्रीय सरकार या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अन्य अधिकारी द्वारा की गई कोई कार्यवाही किसी सिविल न्यायालय में किसी वाद या आवेदन या अपील अथवा पुनरीक्षण के रूप में प्रश्नगत नहीं की जाएगी और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्यवाही के संबंध में किसी सिविल न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई व्यादेश मंजूर नहीं किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी कोई सिविल न्यायालय या अन्य प्राधिकारी, धारा 36 में निर्दिष्ट मामलों के संबंध में कोई अधिकारिता, शक्तियां या प्राधिकार नहीं रखेगा या उसका प्रयोग करने का हकदार नहीं होगा ।

48. अन्य अधिनियमितियों से असंगत अधिनियम और नियमों आदि का प्रभाव – इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किए गए किसी आदेश के उपबंध, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के फलस्वरूप प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में अंतर्विष्ट उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे ।

49. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही, –

(क) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकारी या

जिला मजिस्ट्रेट अथवा सरकार या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी या किसी अन्य ऐसे प्राधिकारी के, जिसको इस अधिनियम के अधीन शक्तियां प्रदान की गई हैं, विरुद्ध ऐसी बात के लिए जो इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किए गए आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या किए जाने के लिए तात्पर्यित है ; और

(ख) आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए निदेशित किसी संक्रिया के दौरान, सशस्त्र बलों या अर्द्ध सैनिक बलों के किसी सेवारत या सेवानिवृत्त सदस्य के विरुद्ध, उसके द्वारा सद्भावपूर्वक की गई या किए जाने के लिए तात्पर्यित किसी कार्रवाई के संबंध में,

नहीं होगी ।

50. व्यावृत्ति – इस अधिनियम की किसी बात का संघ की नौ सेना, सेना या वायु सेना या अन्य सशस्त्र बलों से संबंधित किसी विधि के अधीन किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारिता या उसको लागू प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

51. अधिनियम के अधीन आरोपित व्यक्ति के पासपोर्ट और आयुध अनुज्ञप्ति का परिबद्ध किया जाना – तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी किसी ऐसे व्यक्ति का पासपोर्ट और उसकी आयुध अनुज्ञप्ति, जिसे इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किए जाने के लिए आरोपित किया गया है, ऐसी अवधि के लिए जिसे न्यायालय ठीक समझे परिबद्ध किए गए समझे जाएंगे ।

[1][**51क. केन्द्रीय सरकार की कतिपय शक्तियां** – आतंकवादी क्रियाकलापों का निवारण करने और उनका मुकाबला करने के लिए केन्द्रीय सरकार को निम्नलिखित कार्य करने की शक्ति होगी, –

(क) आदेश की अनुसूची में सूचीबद्ध व्यष्टियों या अस्तित्वों या आतंकवाद में लगे या लगे होने के लिए संदिग्ध किसी अन्य व्यक्ति द्वारा या उनकी ओर से या उनके निदेश पर धारित

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 14 द्वारा अंत:स्थापित ।

निधियों और अन्य वित्तीय आस्तियों या आर्थिक संसाधनों पर रोक लगाना, उनका अभिग्रहण करना या उन्हें कुर्क करना ;

(ख) आदेश की अनुसूची में सूचीबद्ध व्यष्टियों या अस्तित्वों या आतंकवाद में लगे या लगे होने के लिए संदिग्ध किसी अन्य व्यक्ति के फायदे के लिए निधियों, वित्तीय आस्तियों या आर्थिक संसाधनों या संबद्ध सेवाओं को उपलब्ध कराने से किसी व्यष्टि या अस्तित्व को प्रतिषिद्ध करना ;

(ग) आदेश की अनुसूची में सूचीबद्ध व्यष्टियों या आतंकवाद में लगे या लगे होने के लिए संदिग्ध किसी अन्य व्यक्ति के भारत में प्रवेश करने या भारत से उसके अभिवहन को रोकना ।]

52. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) इस अधिनियम के अधीन जारी की गई सूचनाओं या किए गए आदेशों की तामील और वह रीति जिसमें ऐसी सूचनाओं या आदेशों की वहां तामील की जा सकेगी जहां वह व्यक्ति, जिस पर तामील की जानी है, निगम, कंपनी, बैंक या अन्य संगम हैं ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन कोई जांच करने या किसी आवेदन का निपटारा करने में अधिकरण या जिला न्यायाधीश द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) धारा 28 की उपधारा (2) के अधीन समपहृत संपत्ति की कीमत का अवधारण ;

(घ) धारा 36 की उपधारा (3) के अधीन किसी आवेदन को ग्रहण करने और उसे निपटाने के लिए प्रक्रिया ;

(ङ) धारा 37 की उपधारा (2) के अधीन पुनर्विलोकन समिति

के सदस्यों की अर्हताएं ; और

[1][(ङङ) वह समय जिसके भीतर धारा 45 की उपधारा (2) के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी दी जाएगी और केन्द्रीय सरकार को सिफारिश की जाएगी ; और]

(च) कोई अन्य विषय, जिसे विहित किया जाना है या जो विहित किया जाए ।

53. आदेशों और नियमों का संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना – [2][(1)] इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया प्रत्येक आदेश और बनाया गया प्रत्येक नियम किए जाने या बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह ऐसी कुल तीस दिन की अवधि के लिए सत्र में हो, जो एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकती है, रखा जाएगा और यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्र के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस आदेश या नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं या दोनों सदन इस बात से सहमत हो जाएं कि वह आदेश या नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो ऐसा आदेश या नियम, यथास्थिति, तत्पश्चात् केवल ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा या उसका कोई प्रभाव नहीं होगा तथापि, उस आदेश या नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से पहले उसके अधीन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

[3][(2) अनुसूची की प्रविष्टि 33 में निर्दिष्ट आदेश और उस आदेश में किया गया प्रत्येक संशोधन किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी ।]

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 15 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2008 के अधिनियम सं 35 की धारा 16 द्वारा पुन:संख्यांकित ।

[3] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 16 द्वारा अंत:स्थापित ।

[1][पहली अनुसूची]

धारा 2(1)(ड) और धारा 35 देखिए

आतंकवादी संगठन

1. बबर खालसा इंटरनेशनल ।
2. खालिस्तान कमांडो फोर्स ।
3. खालिस्तान जिंदाबाद फोर्स ।
4. इंटरनेशनल सिख यूथ फेडरेशन ।
5. लश्कर-ए-तैयबा/पासबान-ए-अहले हदीस ।
6. जैश-ए-मोहम्मद/तहरीक-ए-फुरकौन ।
7. हरकत उल-मुजाहिदीन/हरकत-उल-अंसार/हरकत-उल-जैहाद-ए-इस्लामी ।
8. हिजबुल मुजाहिदीन/हिजबुल मुजाहिदीन पीर पंजाल रेजिमेंट ।
9. अल अमर मुजाहिदीन ।
10. जम्मू और कश्मीर इस्लामिक फ्रंट ।
11. यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट आफ असम (उल्फा) ।
12. नेशनल डेमोक्रेटक फ्रंट आफ बोडोलैंड (एनडीएफबी) ।
13. पीपल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) ।
14. यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट (यूएनएलएफ) ।
15. पीपल्स रेवोल्यूशनरी पार्टी आफ कांगलीपाक (पीआरईपीएके) ।
16. कांगलीपाक कम्युनिस्ट पार्टी (केसीपी) ।
17. कांग्लेई योल कान्बालुप (केवाई केएल)।
18. मणिपुर पीपल्स लिबरेशन फ्रंट (एमपीएलएफ) ।
19. आल त्रिपुरा टाइगर फोर्स ।

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 14 द्वारा पुन:संख्यांकित ।

20. नेशनल लिबरेशन फ्रंट आफ त्रिपुरा ।

21. लिबरेशन टाइगर्स आफ तमिल ईलम (एलटीटीई) ।

22. स्टुडेंट्स इस्लामिक मूवमेंट आफ इंडिया ।

23. दीनदार अंजुमन ।

24. कम्युनिस्ट पार्टी आफ इंडिया (मार्कसिस्ट-लेनिनिस्ट) पीपल्स वार, उसकी सभी विरचनाएं और फ्रंट संगठन ।

25. माओइस्ट कम्युनिस्ट सेंटर (एमसीसी), उसकी सभी विरचनाएं और फ्रंट संगठन ।

26. अल बदर ।

27. जमायते-उल-मुजाहिदीन ।

28. अल-कायदा ।

29. दुखतरान-ए-मिल्लत (डीईएम) ।

30. तमिलनाडु लिबरेशन आर्मी (टीएनएलए) ।

31. तमिल नेशनल रिट्रीबल ड्रुप्स (टीएनआरटी) ।

32. अखिल भारत नेपाली एकता समाज (एबीएनईएस) ।

[1][33. संयुक्त राष्ट्र (सुरक्षा परिषद्) अधिनियम, 1947 (1947 का 43) की धारा 2 के अधीन बनाए गए और समय-समय पर यथासंशोधित आतंकवाद का निवारण और दमन (सुरक्षा परिषद् के संकल्पों का कार्यान्वयन) आदेश, 2007 की अनुसूची में सूचीबद्ध संगठन ।]

[2][दूसरी अनुसूची

[धारा 15 (2) देखिए]

(i) वायुयान के विधिविरुद्ध अभिग्रहण का दमन करने संबंधी कन्वेंशन (1970) ;

(ii) सिविल विमानन की सुरक्षा के विरुद्ध विधिविरुद्ध कृत्यों का

---

[1] 2008 के अधिनियम सं. 35 की धारा 17 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2013 के अधिनियम सं. 3 की धारा 14 द्वारा अंत:स्थापित ।

दमन करने संबंधी कन्वेंशन (1971) ;

(iii) अंतरराष्ट्रीय रूप से संरक्षित व्यक्तियों के, जिनके अंतर्गत राजनयिक अभिकर्ता भी हैं, विरुद्ध अपराधों के निवारण और दंड संबंधी कन्वेंशन (1973) ;

(iv) बंधकों को लेने के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन (1979) ;

(v) न्यूक्लीय पदार्थ की भौतिक संरक्षा संबंधी कन्वेंशन (1980) ;

(vi) सिविल विमानन की सुरक्षा के विरुद्ध विधिविरुद्ध कृत्यों का दमन करने संबंधी कन्वेंशन के अनुपूरक, अंतरराष्ट्रीय सिविल विमानन में लगे वायुपत्तनों पर हिंसा के विधिविरुद्ध कृत्यों का दमन करने संबंधी प्रोटोकोल (1988) ;

(vii) सामुद्रिक नौपरिवहन की सुरक्षा के विरुद्ध विधिविरुद्ध कृत्यों का दमन करने संबंधी कन्वेंशन (1988) ;

(viii) महाद्वीपीय मग्नतट भूमि पर अवस्थित स्थिर प्लेटफार्मों की सुरक्षा के विरुद्ध विधिविरुद्ध क्रियाकलापों का दमन करने संबंधी प्रोटोकोल (1988) ; और

(ix) आतंकवादी बमबारी का दमन करने संबंधी अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन (1977) ।

तीसरी अनुसूची

[धारा 15 (1) के स्पष्टीकरण का खंड (ख) देखिए]

उच्च क्वालिटी के कूटकृत भारतीय करेंसी नोटों को परिभाषित करने के सुरक्षा लक्षण –

(क) जलचिह्न;

(ख) अप्रकट प्रतिबिंब; और

(ग) करेंसी नोटों में आलेख्य के माध्यम से देखना ।]

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण) – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145.00
4.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
6.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
7.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान	2021	कीमत रु. 300/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in